हिन्दी प्रचार

का

इतिहास

हिन्दी-प्रचार का इतिहास

लेखक

जय शङ्कर त्रिपाठी

साहित्याचार्य, एम० ए०

भारती परिषद, प्रयाग

प्रकाशक

भारती परिषद्, प्रयाग

●

प्रथम संस्करण

१९६७

●

मुद्रक

मूल्य—तीन रुपए

निवेदन

जन-भाषा हिन्दी के विकास की कहानी तब शुरू होती है जब इस देश की राजनीतिक अवचेतना का आरम्भ होता है। इसीलिए हिन्दी की व्यापकता और उसके प्रचार-प्रसार को मूलभूमि धार्मिक क्रान्ति के सन्देश-वाहक सन्तों और लोकभाषा के कवियों के इतिहास से आवृत है, राजनीति से इसे प्रेरणा नहीं मिली है। इतिहास का यह सिलसिला एक हजार वर्ष पुराना है। हिन्दी भाषा के सभी रूपों—राजस्थानी अवधी, ब्रज और खड़ी बोली का प्रसार एक साथ ही उस इतिहास में दिखाई पड़ता है, परन्तु अवधी और ब्रज को राम और कृष्ण की जन्म-भूमि की बोली होने के कारण प्राथमिकता मिल गई। खड़ी बोली, जो आज हिन्दी का मानक रूप है, धार्मिक क्रान्ति के सन्तों द्वारा ही अपनायी गई। जन-सम्पर्क के लिए मुसलमानों ने जब इसे अपनाया तब इसको 'हिन्दी' नाम उर्दू और दक्खिनी का रूप मिला। सन्तों ने इसे सामान्य रूप से 'भाखा' ही कहा है। साहित्यिक रूप में इसको व्यवहृत करते हुए सैयद इंशा उल्ला खाँ को इसके 'हिन्दवीपन' का लोभ रहा है। जब अँग्रेज आये और उन्हें उत्तर भारत में जनसम्पर्क के निमित्त भाषा का माध्यम खोजना पड़ा तब 'हिन्दुस्तानी' कह कर उन्होंने इस खड़ी बोली को अपनाया। अंग्रेजों के शासन ने देश में एकसूत्रता और शान्ति का जो वातावरण पैदा किया उससे देश में धार्मिक जागरणों के साथ अपनी भाषा के स्वाभिमान का भी जागरण हुआ और उन्नीसवीं शती ई० में अँग्रेज शासकों से यहाँ के जन-प्रतिनिधियों ने प्रशासन में अपनी जनभाषा हिन्दी और नागरी लिपि के व्यवहार की माँग की। उस समय उर्दू और फारसी लिपि का व्यवहार शासन में होता था। यह माँग कुछ अंशों में स्वीकार होती रही और अस्वीकार भी होती रही। इसके साथ ही जब देश की आजादी के लिए प्रबल आन्दोलन खड़ा हुआ तब ईस्वी बीसवीं शती में राष्ट्रनेताओं ने भविष्य में आजादी मिलने पर समूचे देश की राष्ट्रभाषा का हल इस हिन्दी में देखा। सन् १९४७ में हमें आजादी प्राप्त हो गई। आजादी मिलने के साथ जैसी

संभावना थी उसका उलटा हुआ. राजभाषा अंग्रेजी है, हिन्दी अब भी जनभाषा है और देश में जनतन्त्र की सरकार है। इस प्रकार इस जनभाषा हिन्दी की कहानी जनता और शासन के अलग-अलग अस्तित्वों के संघर्ष की लम्बी गाथा है।

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध से धार्मिक और साहित्यिक अनेक संस्थाओं ने हिन्दी को समूचे देश में व्यापक बनाने तथा शासन में प्रतिष्ठित करने के लिए ऐतिहासिक महत्त्व के प्रयास एवं संघर्ष किये हैं। हिन्दी-प्रचार का इतिहास जन-चेतनाओं, ऐतिहासिक परिवर्तनों तथा राजनीतिक स्वार्थों का उलझा हुआ संघर्ष है, जो चल रहा है, अन्तिमेत्थम् उसका निपटारा नहीं हो रहा है। उसका लम्बा विस्तार है। प्रस्तुत पुस्तक में उस विस्तार की एक स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयत्न हुआ है।

आजादी मिलने के बाद हिन्दी के प्रचार-कार्य में भी स्वार्थों ने डेरा डाल दिया और यह कहने में संकोच नहीं है कि १९४७ के पहले हिन्दी की जो सेवा त्यागी जननेताओं द्वारा हुई थी, उस पर ही आज के तथाकथित हिन्दी-सेवक कुठाराघात कर रहे हैं। हिन्दी-सेवा और उसके साहित्य-निर्माण के लिए आज भारत सरकार तथा राज्य सरकारें अनुदान, पुरस्कार और अन्य प्रोत्साहन भी दे रही हैं, भारत की बात तो छोड़िए, 'सोवियत भूमि' भी हिन्दी लेखकों को पुरस्कार देती है, विदेशों में हिन्दी का अध्ययन-अनुशीलन होता है, परन्तु भारत में सामान्यतः हिन्दी के लिए, हिन्दी-विद्वानों के लिए सम्मान नहीं है। उपेक्षा और संघर्षों से भरा हुआ जनभाषा हिन्दी का यह इतिहास हमें तीव्र प्रेरणा देता है कि हम अपने इस महान् राष्ट्र की वाणी को मुखरित करने के लिए उसकी राष्ट्र भाषा हिन्दी को प्रतिष्ठित करें। इस प्रतिष्ठा के कार्य में हमको त्याग और सौजन्य से आगे आना है।

गणतंत्र दिवस

शकाब्द १८८८ —जय शङ्कर त्रिपाठी

प्रयाग।

विषय—क्रम

हिन्दी-प्रचार का इतिहास

१

हिन्दी भाषा का मानक रूप और उसके प्रचार-प्रसार की लम्बी कहानी

हिन्दी की व्यापकता

हिन्दी भारत के मध्य भाग की मातृभाषा है। इस मध्य भाग मे उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश की सीमाएँ आती है। राजस्थान और पजाब के पूर्वी भाग भी इसमे सम्मिलित है। एक हजार वर्ष से इस भूभाग मे जो भी कवि या सन्त हुए है उन्होंने सर्वथा अपनी रचनाओं और उपदेशो के लिए हिन्दी भाषा का प्रयोग किया है, यह बात अवश्य है कि प्रदेश-भेद से प्रारम्भिक शताब्दियों मे हिन्दी के स्वरूप मे भी भेद रहा है। इस स्वरूप-भेद के रहते हुए भी आज हिन्दी के जिस खडीबोली रूप को सर्वमान्यता प्राप्त हुई है, उस रूप के प्रयोग भी हमे हिन्दी के उद्‌भव काल से ही सन्तो और कवियों की रचनाओ मे प्राप्त होते है। उन सन्तो मे से कोई बिहार-बंगाल के है, कोई महाराष्ट्र-राजस्थान के है, कोई पंजाब के है। सन्तो की वाणी का सम्पर्क प्रायः लोकवाणी से होता है अतः सन्तो द्वारा प्रयुक्त हिन्दी का खडी-बोली-रूप उसकी लोक-व्यापकता का सूचक है।

इन सन्तो मे आठवी शती के सरहपा आदि (चौरासी सिद्धो) से लेकर कबीर--सोलहवी शती की अवधि तक के लोक-धर्म की क्रान्ति जगानेवाले अनेक सन्तो के नाम आते है, जिनमे हिन्दीतर प्रदेशों के भी ख्याति-प्राप्त सन्त हैं, इन सन्तो ने जिस भाषा का प्रयोग किया है उसमे आज की खडीबोली के प्रयोग है और उन प्रयोगो को देखकर खड़ी बोली के लोक-व्यापक रूप का

पता चलता है। नामदेव महाराष्ट्र के सन्त हैं, ये तेरहवीं शती में विद्यमान थे। इनका एक छन्द देखिए, जो खड़ीबोली के रूपों में ओतप्रोत है—

माइ न होती बाप न होते, कर्म न होता काया,
हम नहीं होते, तुम नहीं होते, कौन कहाँ से आया ?
चन्द्र न होता, सूर्य न होता, पानी पवन मिलाया,
शास्त्र न होता, वेद न होता, करम कहाँ से आया।
(नामदेव)

महाराष्ट्र-सन्त की खड़ीबोली हिन्दी की यह वाणी हिन्दी की लोक-व्यापकता और लोक-प्रियता दोनों सूचित करती है।

आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार खड़ीबोली का मूल नाम नागरी है—"नागरी भाषा का प्रयोग बहुत पहले से हो रहा है। जिस क्षेत्र की यह आज से सहस्रों वर्ष पूर्व बोली रही है, उस क्षेत्र (मेरठ और मुजफ्फर नगर) में प्रायः ठीक उसी रूप में आज भी बोली जाती है। यद्यपि अमीर खुसरो और नामदेव की ही कुछ रचनाएँ नागरी की सर्वप्रथम रचना के रूप में उपलब्ध हैं तथापि उनकी भाषा का जो पुष्ट रूप प्राप्त है, उसे देखते हुए यह असन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि इस भाषा में पहले से रचना होती रही, जो आज मिल नहीं रही है। विक्रम की आठवीं शताब्दी में रचे हुए आचार्य कुमुदेन्दुमुनि के 'भूवलय' ग्रन्थ में जहाँ उन भाषाओं के नाम गिनाये गये हैं, जिनमें उस ग्रन्थ का पढ़ा जाना सम्भव है, वहाँ नागरी का भी उल्लेख किया गया है। इससे ही यह सिद्ध हो जाता है कि आज से १२०० वर्ष पूर्व भी आज की नागरी (जिसे कुछ लोग खड़ीबोली इसलिए कहते हैं कि ब्रजभाषा की अपेक्षा उसमें कठोरता, रूखापन, अक्खड़पन अधिक है) की प्रसिद्धि मुख्य भाषा के रूप में ही थी।" (रा० प्र० स० वर्धा—रजत-जयन्ती ग्रन्थ, पृष्ठ ३७७-३७८)

चतुर्वेदी जी ने नागरी (खड़ीबोली) के विस्तृत क्षेत्र का निर्देश भी किया है—"जिस प्रकार अवधी, राजस्थानी, ब्रज और मैथिली के विशेष क्षेत्र हैं उसी

प्रसार नागरी का भी। पंजाब और राजस्थान के डाँडे से लेकर मध्यप्रदेश के मध्य भाग में होती हुई उडीसा को छूती हुई बिहार के पूर्वी छोर तक अपना हाथ फैला कर नेपाल की तराई के नीचे से आकर भारत की राजधानी के पश्चिम पडनेवाले सम्पूर्ण भूभाग को अपने अंक मे नागरी समेट लेती है।" (वही पृष्ठ ३७६)।

सिखो के गुरु अर्जुनदेव ने 'गुरु ग्रन्थ साहब' का सकलन किया था, जिसमें गुरु नानक के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों के सन्तो की वाणियाँ भी है। इन वाणियो में भी खडीबोली के रूपो का पुट है।

बारहवीं शती मे गुजरात के प्रसिद्ध विद्वान् हेमचन्द्र ने 'सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन' नामक ग्रन्थ बनाया, उसमे सस्कृत के साथ प्राकृत और अपभ्रंश के छन्दो के उदाहरण भी दिये गये है। ये उदाहरण अवश्य ही हेमचन्द्र के पूर्व के होगे। इन उदाहरणों मे यत्र-तत्र खडीबोली के रूप का दर्शन मिलता है—

> भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कन्तु।
> लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एन्तु॥
> पिय सगमि कउ निद्दडी ? पियहो परोक्खहो केंव।
> मइं बिन्निवि बिन्नासिया निद्द न एँव न तेंव॥

इसी प्रकार चौदहवीं शती के प्रारम्भ मे शार्ङ्गधर ने 'शार्ङ्गधर-पद्धति' नाम का सुभाषित-सग्रह सकलित किया। उसमे भाषा-चित्रकाव्य के उदाहरणो मे देश भाषा के प्रयोग भी हुए है, उस प्रयोग में खडीबोली का रूप स्पष्ट है—

> झूठे गर्व भरा मघालि सहसा रे कन्त मेरे कहे।
> कठे पाग निवेश जाह शरणं श्रीमल्लदेवं विभुम्॥

अपभ्रंश से खडीबोली के रूप का जो विकास हुआ उसका परिचय हमें सिद्धो की वाणियो का अनुशीलन करने से हो जाता है। सरहपा (आठवीं शती) की रचनाओ मे खडीबोली की रूप-प्रक्रिया का प्रत्यक्ष दर्शन होता है—

खाअन्त पिअन्ते सुहहिं रमन्ते,
णित्त पुण्णु चक्काहि भरन्ते।

तेरहवीं शती के अन्त मे अमीर खुसरो ने ठेठ ग्राम्य भाषा मे जो दिल्ली के आसपास प्रदेश की बोली थी, पहेलियाँ लिखी हैं, साहित्यिक परिनिष्ठित भाषा को छोड कर ठेठ ग्रामवाणी मे लिखने का कारण दिल्ली मे मुसलमानी सल्तनत के आरम्भ के साथ शासक और जनता के आरम्भिक सम्बन्धों का प्रभाव था। उनकी पहेलियाँ सर्वांश मे आज की हिन्दी के मूल (ठेठ) रूप म है—

एक थाल मोती से भरा।
सबके सिर पर औधा धरा।
चारो ओर वह थाली फिरे।
मोती उससे एक न गिरे॥ (आकाश)

एक नार ने अचरज किया।
साँप मार पिंजरे मे दिया।
जों जो साँप ताल को खाए।
सूखे ताल साँप मर जाए॥ (दिया-बत्ती)

सिद्ध, नाथपंथी एवं अन्य सन्तो की वाणियो का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज की हिन्दी का मूल खडीबोली (नागरी) रूप पंजाब से महाराष्ट्र तक और सिन्ध से बिहार-बंगाल तक किसी न किसी रूप मे अपना प्रभाव फैला रहा था अथवा भाषाओ या बोलियो मे यत्र-तत्र उसकी सत्ता के दर्शन हो जाते थे। ब्रज और अवधी भाषाओ के क्षेत्र के बाहर खडी-बोली का प्रयोग अन्य भाषा के साथ और स्वतन्त्र रूप मे हो रहा था। महाराष्ट्र के छत्रपति शिवा जी के आश्रित भूषण (१७वी शती) की कविता मे खडी-बोली के प्रयोग है। समर्थ रामदास (१७वी शती) की रचनाएँ खडीबोली में है। गुजरात के सन्त दादू (१७वी शती) और कवि दयाराम (१८वी शती) की खड़ीबोली में रचनाएँ मिलती है। अठारहवी शती मे प्रायः सिन्ध गुजरात

पजाब, उडीसा, महाराष्ट्र सर्वत्र खडीबोली मे सन्तो की रचनाएँ लिखी जाती रही। इसका मूल कारण, जैसा कि पीछे उल्लेख किया गया है, पं० सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार खडीबोली का विस्तृत क्षेत्र हो, अथवा अन्य जो कारण रहे हो लेकिन यह तो स्वीकार ही करना पड़ेगा कि खडीबोली के स्वरूप मे अन्य भाषाओ को आत्मसात् करने या उन भाषाओ में आत्मसात् होने की मिलनसारिता थी।

मुसलमान शासक—उर्दू और दक्खिनी हिन्दी
हिन्दी कवियों द्वारा खड़ीबोली की उपेक्षा का कारण

जब दिल्ली मे मुसलमानों की सल्तनत स्थापित हुई तब दिल्ली के आस-पास की इस खडीबोली को उसके राजपुरुषो और फौजी छावनियों ने अपना प्रश्रय देकर उसके प्रसार मे विशेष सहयोग दिया। यद्यपि उनके प्रश्रय से उसके स्वरूप मे कुछ अन्तर भी पैदा हुआ। और इस अन्तर के साथ सैनिकों द्वारा व्यवहृत होने के कारण फौजी बाजार के नाम पर इसका उर्दू नाम हुआ। फारसी का थोडा-बहुत प्रभाव भी उस पर पडा, लेकिन उतना ही जितना आत्मसात् हो सका। यह दक्षिण मे पहुँची। आज इसे दक्खिनी हिन्दी कहते है। दक्खिनी हिन्दी मे गद्य-पद्य का समृद्ध साहित्य है। आरम्भ मे दक्खिनी हिन्दी मे जो साहित्य लिखा गया वह आज की हिन्दी के बहुत निकट है, उत्तरोत्तर उसमे फारसी की छाप अधिक होती गई है। गोलकुडा के शासक अली आदिल शाह (सतरहवी शती उत्तरार्ध) की दक्खिनी हिन्दी की रचना आज की हिन्दी की ही परम्परा मे है, उनकी कविता का यह नमूना देखिए——

जोबन फड़क्कते है पिव मस्त हो मिलेंगे,
आलिंग बदल रहूँ अब बँद खोल अंगिया का।

इस प्रकार एक प्रश्न हमारे सामने आता है—खड़ीबोली हिन्दी के रूप के इतना व्यापक होते हुए तथा आठवीं शती से ही उसके प्रयोग अभिलक्षित

होने पर भी साहित्यिक भाषा के रूप मे उसका उत्थान उन्नीसवीं-बीसवीं शती मे क्यों हुआ ? इसके दो समाधान हो सकते है, एक यह कि खड़ीबोली के प्रयोग में भाषा की वह मधुरता नही आती थी जो शृंगार तथा भक्ति-भाव के काव्य-गुम्फो के लिए आवश्यक थी, यह लोच और मृदुता ब्रज, अवधी और मैथिली भाषाओ में प्रकृत रूप से ही थी। दूसरा समाधान यह है कि ब्रज और अवधी भाषाएँ, जिनमें हिन्दी के मध्यकाल में धारासार प्रचुर साहित्य लिखा गया, भगवान् कृष्ण और राम की जन्मभूमि में बोली जाती है। राम और कृष्ण की भक्ति का जो प्रवाह ११वीं शती मे दक्षिण से उत्तर की ओर चला, उसके संगम का केन्द्र अयोध्या और ब्रज की ही भूमि थी, अतः वहाँ की भाषा मे ही राम और कृष्ण की भक्ति के पद तथा प्रबन्ध लिखे गये। तुलसीदास और सूरदास के पूर्व अवधी और ब्रज की भाषाओ मे काव्य-रचनाएँ न हुई होगी ऐसी बात नही है, भक्ति के जिस प्रवाह मे उस समय की जनता डूब रही थी, उससे तटस्थ होकर स्थिर होना उस समय के भाषा-कवियों के वश की बात नही थी। परन्तु वे समर्थ कवि नही थे, सूरदास और तुलसीदास जैसे तेजस्वी कवियो के उदय से वे विस्मृति के अन्धकार मे विलीन हो गये। सूरदास के पूर्ववर्ती ब्रजभाषा के ऐसे कवियो और रचनाओ का इतिहास अब खोज मे सामने आ रहा है। दूसरी ओर राम-कृष्ण की भक्ति से मुक्त होने के कारण कबीर की वाणी में अवधी-ब्रज भाषाओं का प्रभाव नही रहा, उस समय देश के अन्य भागो मे अपनाया जानेवाला खड़ी-बोली का रूप ही कबीर की रचनाओं मे पाया जाता है—

आऊँगा न जाऊँगा, मरूँगा न जीऊँगा।
गुरु के सबद रम रम रहूँगा॥

रामकृष्ण के भक्ति-प्रवाह ने जो दूसरा काम किया, वह हिन्दी के लिए सजीवनी बन गया, भले ही वह हिन्दी ब्रज या अवधी रही हो। राम-कृष्ण की भक्ति के साथ उनकी जन्म भूमि की भाषा अवधी और ब्रज का भी प्रचार आसाम-बंगाल तथा अहिन्दी भाषी दक्षिणी प्रदेशो और पश्चिमी प्रदेशो

मे हो गया। राम और कृष्ण नामो की संजीवनी का यह ऋण हिन्दी को नही भूलना चाहिए। तेरहवी शती के उत्तरार्ध में आसाम (नौगाँव) के कवि माधवदेव ने ब्रज भाषा मे कृष्ण भक्ति का गान किया है। बंगाल के भरत-चन्द्र ने और गुजरात के प्रेमानन्द, श्यामलभट्ट, दयाराम एवं भालण की कविताएँ भी हिन्दी मे ही है। हिन्दी के श्रेष्ठ कवि विद्यापति तथा मीराबाई को भी लोग मूलतः बँगला एवं गुजराती का कवि मानते है, जो सम्भवतः अपनी कृष्ण-भक्ति के कारण हिन्दी मे लिखने को प्रेरित हुए। अतः ब्रज और अवधी को जो संरक्षण कृष्ण और राम—नामो की छत्रछाया मे मिला, जो छत्रछाया उन नामो के अनुगमन मे लोक-हृदय का निस्सीम विस्तार थी, ऐसा संरक्षण खडीबोली हिन्दी के रूप को संभव न हुआ। मुसलमानी सल्तनत के साथ उसे जो आश्रय मिला, वह उसकी प्रकृति के विपरीत था, और उसने धीरे-धीरे न केवल नाम मे ही अपने को रेख्ता और उर्दू कहा, बल्कि फारसी के निरन्तर प्रभाव मे उसका स्वरूप हिन्दी मे दूर होता गया, जब कि उसका मूल ठेठ खडीबोली ही है।

इतना होने पर भी हम इससे अस्वीकार नही कर सकते कि आज की परिनिष्ठित (मानक) हिन्दी के मूल—खडीबोली को प्रथम प्रश्रय और विकास देनेवाले मुसलमान शासक है। अमीर खुसरो की रचनाओ का उल्लेख ऊपर किया गया है। खडीबोली गद्य के विकास का इतिहास भी सैयद इंशाअल्ला खाँ और उनकी कृति 'उदयभान चरित या रानी केतकी की कहानी' (सन् १८०३) के उल्लेख के बिना अधूरा ही कहा जायगा ! और इन दोनों सीमाओ के बीच मे उर्दू भाषा के नाम पर दक्खिनी हिन्दी में जो प्रचुर गद्य-पद्य लिखा गया, वह सब खडीबोली हिन्दी की वह समृद्धि है, जो उसे मुसलमान शासकों के कारण मिली हैं और इसी कारण हिन्दी के ऐतिहासिक जागरण के पूर्व उस साहित्य-समृद्धि को हिन्दी-साहित्य से अलग माना जाता रहा। अली आदिल शाह की रचना ऊपर उद्धृत की गयी है, ऐसे कई-एक कवि दक्खिनी हिन्दी के है जो अठारहवी शती के पूर्व हुए है, उनकी रचनाएँ हिन्दी खडीबोली की परम्परा से भिन्न नही है। ऐसे ही एक कवि वर्ली

(औरंगाबाद, जन्म सन १६६८) की ये पंक्तियाँ देखिए, जिन पर नाम मात्र को फारसीपन की छाया है—

बेवफाई न कर खुदा सूँ डर।
जग-हँसाई न कर खुदा सूँ डर।
आरसी देखकर न हो मगरूर
खुदनुमाई न कर खुदा सूँ डर ॥

... ...

फिर मेरी खबर लेने को सइयाद न आया।
शायद कि उसे हाल मेरा याद न आया ॥

मुसलमान शासको के उस संरक्षण को हिन्दी भुला नही सकती।

आश्चर्य है कि राम और कृष्ण की भक्त हिन्दी-प्रेमी जनता के स्वर को मुखरित करनेवाले हिन्दी-कवियो ने ब्रज और अवधी को छोडकर हिन्दी के समर्थ स्वरूप खडीबोली मे रचना करने की प्रवृत्ति न दिखाई, न तो खडी-बोली में अन्तर्हित उस शक्ति की पहचान की, जो गद्य का प्रकृत स्वरूप, शैली और संजीवन है। कदाचित् इसका कारण भी यह रहा हो कि खडीबोली का प्रयोग शाही दरबार मे होता था, वह फारसी के शब्दो से मिश्रित होकर रेख्ता, उर्दू और शाहजहानी उर्दू बन गई थी, अतः राम-कृष्ण का गुणगान करनेवाली कवि-परम्परा ने ऐसी भाषा का तिरस्कार किया हो।

१८वीं और पूर्वार्ध १६वीं शती
मराठा शासकों और अंग्रेजों का हिन्दी के प्रति आकर्षण

हिन्दी के उक्त स्वरूप को मुसलमान शासको के बाद वही प्रश्रय मुगल शासकों ने नही दिया। अकबर ने राजकाज मे फारसी लिपि के प्रयोग की आज्ञा दी और यह परम्परा मुगल शासन के अन्त तक चलती रही। अठारहवी शती में मुगल के पतन के साथ जब मराठा का उदय हुआ।

तो पेशवाओ ने संस्कृत के साथ राजकीय पत्र-व्यवहार मे हिन्दी भाषा और नागरी लिपि को भी अपनाया। उन्नीसवी शती के आरम्भ मे हिन्दी को आंशिक प्रश्रय भारत को विजय करनेवाली अंग्रेज जाति ने भी दिया, शासन और जनता के व्यवहार मे आने योग्य हिन्दीके खडीबोली स्वरूप की पहचान उन्होंने की। यद्यपि बाद मे उन्होंने ही किन्हीं कूटनीतिक कारणो से उर्दू और हिन्दी का झगडा भी खडा किया। और तभी सम्पूर्ण भारत के एक अंग्रेजी शासन मे आबद्ध होने के साथ परम्परागत फारसी लिपि और भाषा के विरुद्ध अपनी हिन्दी भाषा और नागरी लिपि की शासन मे प्रतिष्ठा की भावना जनता मे जागी। और बीसवीं शती मे देश के स्वाधीनता-संघर्ष के साथ हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का अन्दोलन भी खडा हुआ।

सन् १८०३ में फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता के हिन्दी-उर्दू अध्यापक जान गिलक्राइस्ट ने उर्दू और हिन्दी दोनो भाषाओ मे अलग-अलग गद्य की पुस्तके लिखवाने का प्रबन्ध किया, उस कालेज के आश्रय मे ही लल्लू लाल जी ने 'प्रेम सागर' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। अंग्रेजो ने उत्तरी भारत मे शासन-कार्य मे जनता के व्यवहार की सुविधा को देखते हुए हिन्दी के पठन-पाठन की आवश्यकता समझी और शायद इससे भी अधिक आवश्यकता उनको अपने ईसाई धर्म के प्रचार मे हिन्दी को माध्यम बनाने की थी। बंगाल के ईसाई मिशनरी के पादरी रेवरेण्ड एम्० टी० ऐडम ने सब से पहले हिन्दी का एक व्याकरण लिखा और वह सन् १८२७ मे कलकत्ते मे छप कर प्रकाशित हुआ। यह अब तक के उपलब्ध हिन्दी के व्याकरणो मे सब से प्राचीन है। ईसाई धर्म के प्रचार-हेतु हिन्दी की इसी अध्ययन-परम्परा मे ईसाई धर्म-प्रचारक विद्वान् रेवरेण्ड पादरी एस्० एच्० केल्लाग ने सन् १८७५ मे हिन्दी भाषा और व्याकरण का एक विस्तृत अध्ययन अंग्रेजी भाषा मे ईसाई धर्म के प्रचारक अंग्रेजो के लिए प्रस्तुत किया। आगरा, मिरजापुर, मुंगेर एवं बिहार का दक्षिणी भाग उस समय ईसाई-धर्म-प्रचारको के केन्द्र थे

१६वीं पूर्वार्ध शती
हिन्दी-प्रचार के आरंभिक प्रयत्न

दूसरी ओर हिन्दी के उक्त स्वरूप को पहचान कर हिन्दी मे राजकाज और आपसी व्यवहार के लिए उत्तरी भारत को जनता की आँखे जब खुली और उसने हिन्दी को अपनाया, शासन मे सर्वत्र हिन्दी और नागरी लिपि के प्रयोग की अपनी तमन्ना व्यक्त की, तब अंग्रेजो ने ही फारसी की शैली उर्दू के समर्थकों को खड़ा कर नागरी लिपि और हिन्दी के प्रयोग मे अड़ङ्गा पैदाकर दिया। उस अवधि में कलकत्ता, बनारस और आगरा से हिन्दी के अखबार भी हिन्दी-प्रेमियो ने निकाले। पंडित जुगुलकिशोर का 'उदत मार्त्तंड' (सन् १८२६) और राजा राममोहनराय का 'बग दूत' (सन् १८२६) अखबार कलकत्ता से प्रकाशित हुए। सन् १८४५ में बनारस के राजा शिवप्रसाद ने 'बनारस अखबार' निकाला और सन् १८५२ मे आगरा के मुन्शी सदासुख लाल ने 'बुद्धि प्रकाश' समाचार-पत्र निकालना शुरू किया।

निस्सन्देह हिन्दी से अंग्रेजो को खतरा मालूम पडा था। और उनको अपनी ईमानदार स्थिति व्यक्त करने के लिए बहुत प्रबल आधार था, जब भारत के शासन पर उनका आधिपत्य हुआ तब सरकारी दफ्तरो और अदालत की कार्रवाइयों मे फारसी भाषा और लिपि का व्यवहार हुआ करता था, उन्हें उस परम्परा को यथावत् जारी रखने मे कोई लांछन नही था, न नया प्रयास करना था। परन्तु जनता की कठिनाइयो की उपेक्षा भी सरकार नही करना चाहती थी, अतः कम्पनी सरकार ने सन् १८०३ मे एक आज्ञा निकाली उस आज्ञा के अनुसार जिले के कलक्टरो से यह कहा गया कि फारसी और नागरी दोनों भाषाओं और लिपियो मे अदालत के काम जनता की सुविधा को दृष्टि में रख कर किये जाये। सन् १८३६ मे ऐसा ही एक दूसरा इश्तहारनामा निकला, जिसके अनुसार सभी अदालती कामकाज देश की प्रचलित भाषाओ मे करने के लिए हुक्म हुआ। पर सन् १८३७ मे एक दूसरा हुक्म निकला जिसके अनुसार इस उत्तर प्रदेश के सरकारी दफ्तरो

की भाषा उर्दू कर दी गई। यह उर्दू के समर्थक मुसलमानों के प्रयत्न का परिणाम था। किन्तु सरकार का उद्देश्य इस उर्दू भाषा में जनभाषा की ओर ही था।

सरकारी दफ्तरों में हिन्दी भाषा और नागरी लिपि की उपेक्षा के प्रति हिन्दी-प्रदेशों—उत्तर प्रदेश (तब पश्चिमोत्तर प्रदेश), बिहार और मध्यप्रदेश (अब मध्यप्रान्त) में एक साथ संघर्ष चलता रहा। सन् १८३७ के आदेश के बाद सभी जगह उर्दू भाषा और फारसी लिपि का प्रयोग होने लगा था और भाषा उर्दू की आड़ में फारसी होती गई। १८३७ के आदेश का जितनी तत्परता से पालन सरकारी दफ्तरों में हुआ, उतनी तत्परता से उन आदेशों का पालन नहीं होता था जो हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के प्रयोग के लिए होते थे। वस्तुतः इसमें अंग्रेज सरकार का उतना दोष नहीं था, जितना नीचे के उन कार्यकर्त्ताओं और छोटे अफसरों का, जो परम्परा से मुगल शासन के समय से ही फारसी भाषा और लिपि में काम करने के व्यसनी हो गये थे और जिनमें अधिकांश मुसलमान तथा कायस्थ थे। इस बिगड़ी हुई परम्परा की निन्दा अंग्रेज विद्वानों ने स्वयं की है। लिपि के सम्बन्ध में तो नहीं किन्तु भाषा के सम्बन्ध में, सरकार समय-समय पर जैसे-जैसे अदालती भाषा की कठिनाइयों और गलतियों की शिकायतें उसको मिलतीं, आज्ञा-पत्र जारी करती रही कि फारसी-पूरित उर्दू न लिखी जाकर ऐसी भाषा का प्रयोग दफ्तरों में किया जाय जिसको फारसी से अनभिज्ञ रहनेवाला भी एक कुलीन हिन्दुस्तानी बोलता हो, जो सर्वसाधारण की भाषा हो। ऐसे आज्ञापत्र २८ अगस्त सन् १८४० और ६ मई सन् १८५४ को जारी किये गये। परन्तु मूल प्रश्न लिपि का था, भाषा से अधिक दुरूहता लिपि की थी और फारसी लिपि रहने पर दफ्तरों के कार्यकर्त्ता कभी सर्वसाधारण की भाषा का प्रयोग नहीं कर सकते थे। इसलिए आगे चल कर सरकार ने यह निश्चय करना आरम्भ किया कि दफ्तरों की लिपि रोमन कर दी जाये और भाषा सर्वसाधारण की हो। यह विचार बहुत बाद (सन् १८६६) में दृढ़ हुआ। इधर सरकार फिर भी इसी प्रयत्न में रही कि सर्वसाधारण की भाषा की उपेक्षा न की जाये। उसने सन् १८५६ में एक नया आदेश जारी

किया कि मालविभाग के कर्मचारियों को नागरी-अक्षरो का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, उन्हे इस सम्बन्ध मे परीक्षा पास करना भी अनिवार्य है, यदि ऐसा वे नहीं करते हैं तो नौकरी से हटा दिये जायेंगे। इस आदेश का प्रभाव पड़ा और हिन्दू-मुसलमान सभी अहलकारों ने नागरी पढ़ना आरम्भ कर दिया। इसका और भी अच्छा प्रभाव पड़ता लेकिन तभी १८५७ की क्रान्ति आ गई। क्रान्ति की समाप्ति के बाद सरकार अपनी शासन-सुव्यवस्था और शक्ति सुदृढ करने मे लग गई। नागरी-विषयक आदेश की चर्चा भी नहीं रही।

उन्नीसवी शती के प्रारम्भ मे हिन्दी और नागरी लिपि की ओर जो ध्यान हिन्दी भाषी प्रदेशो मे सरकार का रहा उसका अनुकूल परिणाम न निकला और मध्य की शती तक उर्दू समर्थकों के बराबर प्रयत्न और आन्दोलन के कारण फारसी-पूरित उर्दू भाषा और फारसी लिपि ही अदालतों तथा दफ्तरो में छाई रही। हिन्दी और नागरी लिपि के समर्थक भी थे, उनके अखबार भी निकल रहे थे, पर इस प्रश्न को आन्दोलन का रूप देनेवाले समर्थ व्यक्तियो के अभाव से नागरी लिपि और हिन्दी भाषा को यथोचित स्थान न मिला।

सन १८६० से १९००

उत्तरी भारत में हिन्दी-प्रचार का जागरण

सन् १८६० के बाद १९०० ई० तक का समय हिन्दी के महत्व पूर्ण संघर्षों का रहा है, इसका कारण यह था कि उन्नीसवी शती के इन अन्तिम दशकों मे हिन्दी के आन्दोलन को मुखरित करनेवाले राजा शिवप्रसाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महामना मालवीय जैसे समर्थ एवं प्रतिभावान् व्यक्ति उसको प्राप्त हुए। ये तीनों व्यक्ति काशी के थे। इनके साथ पंजाब के पं० श्रद्धाराम फुल्लौरी और मेरठ के पं० गौरीदत्त शर्मा का भी नाम लिया जाना चाहिए। ये नाम आन्दोलन की आवाज को ऊँचा उठानेवाले व्यक्तियों के है। जिन्होंने आन्दोलन का नाम नही लिया पर स्वयं अपने कार्यों एवं भाषणो से हिन्दी का सम्यक् प्रचार-प्रसार करते रहे, ऐसे व्यक्तियो में आर्यसमाज के

संस्थापक स्वामी दयानन्द है जिनके द्वारा हिन्दी की अनुपम सेवा हुई है। ऊपर प्रमुख व्यक्तियों के ही नाम लिये गये है, उनके साथ प्रदेश-व्यापी उनके अनुयायियो का भी बहुत बड़ा समूह था। सन् १८६० के बाद १९०० ई० तक के हिन्दी के संघर्ष के इतिहास की प्रमुख तिथियों का उल्लेख इस प्रकार है—

(१) सन् १८६३ मे स्वामी दयानन्द समाज-सेवा के क्षेत्र मे आये और सन् १८७५ मे उन्होने आर्यसमाज की स्थापना की। देश के विभिन्न भागो मे घूम-घूमकर उन्होने सदा हिन्दी मे व्याख्यान दिये और अपने धर्म-प्रचार के ग्रन्थ हिन्दी मे लिखे। उनके कारण देश के निवासियो की एक बडी सख्या हिन्दी की ओर आकृष्ट हुई। पंजाब मे हिन्दी का प्रचार आर्य-समाज की ही देन है। आर्य-समाज के अनुयायी के लिए हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का प्रयोग अनिवार्य कर्तव्य था। वे हिन्दी को आर्य-भाषा कहते थे। स्वामी जी का हिन्दी मे लिखा 'सत्यार्थप्रकाश' आज भी अध्ययन किया जाता है।

(२) स्वामी दयानन्द के समकाल ही पंजाब मे पं० श्रद्धाराम फुल्लौरी ने हिन्दी को माध्यम बना कर धार्मिक व्याख्यानों और उपदेशों की धूम मचा दी, उनकी वक्तृताएँ बडी प्रभावकारी और आकर्षक होती थी। और इस कारण से हिन्दी के प्रति भी जनता मे आकर्षण बढता था।

(३) काशी के राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' सन् १८५६ मे शिक्षा विभाग मे इस्पेक्टर नियुक्त हुए थे। उनके ही समकाल बाबू नवीन चन्द्र राय पजाब मे शिक्षा विभाग के अधिकारी थे। दोनों व्यक्ति सरकार के शिक्षा विभाग मे रह कर भी हिन्दी के उत्कर्ष के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। इनमे बाबू नवीनचन्द्र राय ने सन् १८६३ से १८८० के बीच हिन्दी मे विभिन्न विषयों की पुस्तकें स्वयं लिखी और दूसरो से लिखवाई। जिससे पठन-पाठन मे हिन्दी-पुस्तको का अभाव उसके प्रचार में बाधक न बने। राजा शिवप्रसाद ने भी यद्यपि इसी उद्देश्य से पुस्तकें लिखी तो भी उनकी हिन्दी का रूप बहुत कुछ बीसवी शती मे परिकल्पित गाँधी जी की हिन्दुस्तानी भाषा का था, लिपि नागरी थी भाषा प्रायः उर्दू। सम्भवतः नागरी लिपि के प्रचार के लिए उन्होंने यह रास्ता रखा होगा

(४) सन् १८६८ में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी और साहित्य सेवा के क्षेत्र मे आये, इसी वर्ष 'विद्यासुन्दर' बंगला नाटक का उनका अनुवाद प्रकाशित हुआ। सन् १८७३ मे 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका) पत्रिका प्रकाशित की। इस पत्रिका मे हिन्दी के स्वरूप और शैली का अद्यतन रूप पहली बार सँवर कर सामने आया। हिन्दी की इस शैली के साथ हिन्दी-हितैषी साहित्यकारो की एक बहुत बड़ी मंडली लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सन् १८८६ (अपनी मृत्यु-पर्यन्त) तक हिन्दी के संघर्ष और आन्दोलन के प्रमुख कर्णधार रहे।

(५) सन् १८७३ मे बंगाल सरकार ने (तब बंगाल प्रान्त मे बिहार भी सम्मिलित था) पटना, भागलपुर तथा छोटा नागपुर—डिवीजनो के सरकारी दफ्तरों और अदालतो मे हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के प्रयोग का आदेश जारी किया। अफसरो से हिन्दी अक्षरो का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कहा गया। जनता के लिए यह छूट थी कि वह अपनी याचिकाएँ हिन्दी या उर्दू किसी भाषा मे दे। पर इसका पालन नहीं हुआ। सन् १८७४ मे एक दूसरे परिपत्र द्वारा पुनः उक्त आदेश को पालन करने के लिए आग्रह किया गया. परन्तु जनता के बहुत चाहते हुए भी आदेश कार्यान्वित न हुआ।

(६) सन् १८८२ मे मेरठ के हिन्दी-प्रेमियो ने देवनागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की। और सरकारी दफ्तरों मे हिन्दी तथा नागरी लिपि के प्रवेश के लिए बराबर प्रचार और आन्दोलन करते रहे। इसके प्रमुख संचालक प० गौरीदत्त शर्मा थे।

(७) सन् १८८२ ई० मे भारत सरकार ने एक शिक्षा-आयोग नियुक्त किया जिसने विभिन्न प्रान्तो मे जाकर शिक्षा-विषयक कठिनाइयो, समाधानो और स्थिति का अध्ययन किया। पश्चिमोत्तर प्रदेश के (जिसमे तब सागर और अजमेर के जिले भी सम्मिलित थे), मान्य लोगो ने आयोग के समक्ष जो बयान और उसकी प्रश्नावली के उत्तर दिये है, उस बयान और उत्तर में उर्दू और हिन्दी का वर्तमान संघर्ष एक प्रमुख भाग है, इन गण्यमान्य व्यक्तियो मे हिन्दी के समर्थक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र भी थे।

(८) १० मार्च १८९३ में नागरी प्रचारिणी सभा काशी की स्थापना हुई। उस समय इस सभा के दो उद्देश्य थे—नागरी अक्षरों का प्रचार और हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि करना। इसके प्रथम सभापति बाबू राधाकृष्ण दास थे। और संचालकों में प्रमुख थे—ठाकुर शिवकुमार सिंह, प० रामनारायण मिश्र और श्री श्यामसुन्दर दास।

(९) सन् १८९६ में सरकार ने पश्चिमोत्तर प्रदेश के नागरी और फारसी लिपि के विवाद को समाप्त करने के लिए अदालतों और सरकारी दफ्तरों में फारसी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि को प्रचलित करने का मत व्यक्त किया। नागरी प्रचारिणी सभा काशी के कार्यकर्ताओं ने सरकार के पास इसका विरोध किया, 'नागरी कैरेक्टर' नाम से एक पुस्तिका भी छापी। सरकार ने इस सम्बन्ध में निर्णय करने के लिए जो समिति नियुक्त की, उसने रोमन लिपि प्रचलित करने के लिए अपना मत व्यक्त किया परन्तु सरकार ने स्वयं २७ जुलाई १८९६ को रोमन लिपि के प्रचार का अपना विचार त्याग दिया।

(१०) १९वीं शती के अन्त में पं० मदनमोहन मालवीय ने नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के आन्दोलन का नेतृत्व किया। अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए उनका एक प्रभावशाली प्रतिनिधि-मंडल २ मार्च १८९८ को लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर एण्टोनी मैकडानेल से प्रयाग के राजभवन में मिला। इस प्रतिनिधि मण्डल में प्रदेश के १७ गण्यमान्य व्यक्ति थे। लगभग ६० हजार हस्ताक्षर १६ जिल्दों में बाँध कर प्रार्थनापत्र के साथ दिये गये थे। इन हस्ताक्षरों को इकट्ठा करने में लोगों ने दिन-रात एक कर दिया था। मालवीय जी ने उस अवसर पर अंग्रेजी में एक पुस्तिका तैयार की थी—कोर्ट कैरेक्टर एण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ-वेस्टर्न प्राविन्सेज (पश्चिमोत्तर प्रदेश अदालती लिपि और प्राइमरी शिक्षा)। इस पुस्तक में हिन्दी के पक्ष में सभी सम्भावित तथ्य इकट्ठा किये गये थे। लेफ्टिनेण्ट गवर्नर ने तत्काल कोई निश्चय तो नहीं किया लेकिन उन्होंने हिन्दी के पक्ष में कही गई अनेक बातों को स्वीकार किया।

(११) १८ अप्रैल सन् १९०० में सरकार ने एक नई विज्ञप्ति निकाली,

जिसके अनुसार उसने अदालतों में नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के प्रयोग को भी फारसी लिपि और उर्दू भाषा के साथ अनिवार्य किया। जनता को उसके इच्छानुसार इसके प्रयोग की छूट रखी गई। क्लर्कों और अफसरों को उनकी नियुक्ति के लिए दोनों लिपियों का ज्ञान आवश्यक था। यह नियम केवल दीवानी, माल तथा राजस्व न्यायालयों के लिए था। पर हिन्दी के लिए यह आंशिक सफलता थी।

(१२) सन् १९०० में अखिल भारतीय सनातनधर्म-सभा की स्थापना दिल्ली में हुई। सभी प्रदेशों में सनातनधर्म-सभा की छोटी-छोटी शाखाओं को मिला कर यह अखिलभारतीय रूप दिया गया। आर्य समाज के विरोध में सभा का यह रूप खड़ा हुआ था। सभा से ४०० संस्थाएँ सम्बद्ध थीं। इस सभा से हिन्दी का बड़ा हित हुआ। हिन्दी भाषा और नागरी लिपि ही इस सभा के विचारों के प्रचार-प्रसार का माध्यम थी। अहिन्दी प्रदेशों में भी हिन्दी में प्रकाशित सामग्री प्रसारित की जाती थी।

(१३) सन् १९०० में प्रयाग के इंडियन प्रेस ने पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादकत्व में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। वे सन् १९२० तक सरस्वती के सम्पादक रहे। द्विवेदी जी की विद्वत्ता और योग्यता ने इस पत्रिका के द्वारा हिन्दी में सुयोग्य लेखकों का निर्माण किया और हिन्दी को प्रशस्त शैली तथा रूप दिया, इससे भी हिन्दी के गौरव और प्रचार में अभिवृद्धि हुई।

सन् १९०० तक के संघर्ष के तीन महत्त्वपूर्ण परिणाम रहे—(क) हिन्दी भाषा और नागरी लिपि को उर्दू भाषा तथा फारसी लिपि के साथ १८ अप्रैल १९०० की राजकीय विज्ञप्ति के अनुसार अदालतों में स्थान मिल गया। (ख) आर्य-समाज, सनातनधर्म तथा अन्य साहित्यिक संस्थाओं एवं पत्रिकाओं द्वारा अत्यन्त वेग से हिन्दी भाषा और लिपि का प्रचार हुआ। (ग) हिन्दी की महत्त्वपूर्ण संस्था नागरी प्रचारिणी सभा काशी की स्थापना सन् १८९३ में हुई, जिसने आरम्भ से ही नागरी लिपि और हिन्दी के लिए अमूल्य सेवाएँ अर्पित की हैं।

हिन्दी-प्रचार के उक्त परिणामों के अतिरिक्त इन अन्तिम चार दशकों की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हिन्दी-गद्य के मानक रूप की प्रतिष्ठा है। इस प्रतिष्ठा का पहला उज्ज्वल स्वरूप राजा लक्ष्मण सिंह के 'शकुन्तला नाटक' के अनुवाद (सन् १८६३) में प्रकट हुआ। राजा जी के इस नाटक में जिस हिन्दी का प्रयोग हुआ है, वह खड़ीबोली हिन्दी के ठेठ रूप का ही साहित्यिक रूपान्तर है। हिन्दी-गद्य का यह पहला टकसाली रूप है। 'शकुन्तला नाटक' में प्रयुक्त छोटे वाक्य, शब्दों-अर्थों के स्वाभाविक प्रयोग और शैली की मौलिकता ने हिन्दी-गद्य के स्वरूप का नया प्रभात किया। 'शकुन्तला नाटक' की भाषा जनता की भाषा और साहित्य की भाषा—दोनों थी, जब कि अरबी-फारसी के उन शब्दों का भी, जो जनता में बहुत प्रचलित थे, इस नाटक में प्रयोग नहीं हुआ और संस्कृत के वही शब्द इसमें व्यवहृत हुए जो जनता के व्यवहार में आते थे। राजा जी की हिन्दी ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (सन् १८७३) की 'नई चाल में ढली हिन्दी' का आदर्श थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके अन्य प्रमुख सहयोगी—राधाकृष्णदास, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट जैसे लेखकों ने हिन्दी के इस रूप को और निखारा, तथा उसे स्थायित्व प्रदान किया। इन लेखकों की प्रतिभा और सत्प्रयत्न का ही फल था कि हिन्दी के इस रूप में, 'सरस्वती' पत्रिका (सन् १९००) के आरम्भ के साथ, प्रांजल काव्य-रचना भी होने लगी। हिन्दी-गद्य के मानक रूप की इस प्रतिष्ठा से हिन्दी-प्रचार को बहुत बल मिला।

२

राष्ट्रभाषा की खोज और हिन्दी

सन् १६०० तक हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए जो भी कार्य हुए, उनसे हिन्दी की सहज लोकप्रियता साकार हो उठी। आर्य-समाज और सनातनधर्म-सभा के उपदेश तथा व्याख्यान सम्पूर्ण देश मे हिन्दी मे पढ़े और समझे जाते थे। जैसे हिन्दी भाषा की बोध-प्रकृति इस देश की जनवाणी की प्रकृति थी। इन पिछले तीस वर्षो मे भारतेन्दु-मण्डल के उदय के पश्चात् हिन्दी-गद्य का प्रचुर साहित्य लिखा गया, उसकी यह प्रचुरता भाषा की प्रौढता थी। सरकारी अदालतो और दफ्तरो मे हिन्दी भाषा और नागरी लिपि की जो उपेक्षा हुई उससे हिन्दी के प्रेमियो को हिन्दी की उन्नति के लिए सदैव प्रेरणा मिलती रही। पराधीन देश मे अपनी भाषा की उन्नति के लिए संघर्ष करने मे वह आत्मतृप्ति मिल रही थी, जो स्वतन्त्रता के संघर्ष मे मिलती। भारतेन्दु जी ने लिखा है—

> निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
> बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय का शूल॥

उन्नीसवी शताब्दी मे हिन्दी के प्रचार-प्रसार का क्षेत्र हिन्दी-भाषी प्रदशो तक ही था। पश्चिमोत्तर प्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश मे सरकार से हिन्दी भाषा और नागरी लिपि को अपनाये जाने के लिए माँग की जा रही थी। बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे इस माँग के व्यापक रूप की कल्पना की गई

और हिन्दी के सामने महान् लक्ष्य स्थिर हुआ—अर्थात् हिन्दी इस महान् देश की राष्ट्रभाषा होने की क्षमता रखती है, उसको इस क्षमता को साकार होने के लिए प्रयत्न किये जाने चाहिए।

हिन्दी का यह महान् लक्ष्य तब स्थिर हुआ जब राष्ट्र नेताओं के सामने, जो आजादी के लिए संघर्ष कर रहे थे, सम्पूर्ण देश के लिए एक राष्ट्रभाषा का प्रश्न आया, उस समय हिन्दी पूरे देश में इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी थी कि नेताओं के सामने उनके प्रश्न का उत्तर 'हिन्दी' ही था। जो लोग देश की स्वतंत्रता के भविष्य का सुनहला स्वप्न देख रहे थे, वे स्वतंत्र देश की अपनी राष्ट्रभाषा की खोज में भी थे। सन् १९१० में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग की स्थापना राष्ट्रभाषा की खोज का ही उद्योग था। राष्ट्रीय कांग्रेस के सारे कार्य-कलाप अंग्रेजी के माध्यम से होते थे, महात्मा गांधी को सन् १९१५–१६ में इस कार्य-कलाप में भाषा की राष्ट्रीयता का अभाव अनुभव हुआ। महामना मालवीय और गाँधी ने इस अभाव को दूर करने का प्रयत्न किया और सम्पूर्ण देश में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए प्रेरणाएँ दी। उनके सामने राष्ट्रभाषा की खोज का प्रश्न आजादी के प्रश्न के समानान्तर ही था। देश की आजादी के लिए राष्ट्रीय कांग्रेस और राष्ट्रभाषा रूप में हिन्दी की प्रतिष्ठा के लिए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, दोनों एक समान ही संघर्ष-रत थे। महात्मा गाँधी की प्रेरणा से सन् १९१८ में मद्रास में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग का प्रचार-कार्यालय खोला गया, आगे चल कर उसने दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा का रूप लिया। सन् १९३८ में राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति वर्धा की स्थापना हुई। इन संस्थाओं की स्थापना अहिन्दी-भाषी प्रदेशों में राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार के लिए ही की गई। राष्ट्रभाषा की खोज ने एक नया मोड़ तब लिया जब १९४२ में हिन्दुस्तानी-प्रचार-समिति वर्धा की स्थापना महात्मा गाँधी की ही प्रेरणा से हुई और राष्ट्रभाषा हिन्दी के स्वरूप के सम्बन्ध में विकल्प उपस्थित हुआ। इस प्रकार बीसवीं शती के पूर्वार्ध का हिन्दी के संघर्ष का इतिहास राष्ट्रभाषा की खोज और उस पद पर हिन्दी की प्रतिष्ठा का इतिहास है।

सन् १९१०—१९५०, राष्ट्रभाषा का आन्दोलन और दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार

हिन्दी के संघर्ष की एक सन्तोषप्रद सफलता सन् १९५० में भारतीय संविधान में हिन्दी के राजभाषा स्वीकृत हो जाने से सामने आयी परन्तु संघर्ष पूर्ण रूप से समाप्त हो गया है ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस अर्धशती में हिन्दी के प्रति जनता के सम्मान को देखते हुए उसके विरोध में अब उर्दू के स्थान पर 'हिन्दुस्तानी' को और हिन्दी के राष्ट्रभाषा पद में बाधा डालने के लिए प्रादेशिक भाषाओं का वैमत्य खड़ा कर अंग्रेजी को, हिन्दी-विरोधियों ने खड़ा किया। हिन्दुस्तानी का समर्थन हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए प्रयत्नशील महात्मा गांधी ने भी किया। और अंग्रेजी का समर्थन प्रकट रूप में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद किया जाने लगा। इस अर्धशती में हिन्दी के प्रचार-कार्य के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण काम हुए है, और हिन्दी अब समस्त भारत में पढ़ी तथा लिखी जाने लगी है, विशेष महत्त्वपूर्ण काम दक्षिण भारत में हिन्दी का प्रचार था। इतिहास की प्रमुख तिथियाँ ये हैं—

(१) सन् १९१० में महामना मालवीय जी की प्रेरणा से नागरी-प्रचारिणीसभा काशी ने हिन्दी और नागरी लिपि के व्यापक प्रचार-प्रसार के सम्बन्ध में विचार करने के लिए भारतीय साहित्यकारों का एक सम्मेलन काशी में बुलाया। दूसरे वर्ष ही इस सम्मेलन ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन संस्था का रूप ले लिया। इसका कार्यालय प्रयाग में हुआ। सम्मेलन द्वारा संचालित हिन्दी-परीक्षाओं ने नागरी लिपि और हिन्दी के प्रचार में एक विचित्र आकर्षण पैदा किया। इसके वार्षिक अधिवेशनों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए ठोस कदम उठाये जाने के जो संकल्प किये जाते थे उन कारणों से सन् १९१० से लेकर १९५० तक का हिन्दी-प्रचार का इतिहास अनेकांश में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का ही इतिहास है।

(२) सन् १९१३ में स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुन्शीराम) सम्मेलन के सभापति हुए वे के नेता थे और अत्यन्त थे उनके

नेतृत्व में हिन्दी-प्रचार को बड़ा बल मिला। नैटाल स्थित महात्मा गाँधी के २१ अक्टूबर १६१४ के अपने नाम आये अंग्रेजी पत्र की, हिन्दी का पक्ष लेकर, स्वामी जी ने जो शिकायत की, उससे गाँधी जी को हिन्दी की महत्ता का बोध हुआ।

(३) आज़ादी के लिए संघर्ष करनेवाली राष्ट्रीय कांग्रेस संस्था में महात्मा गाँधी का प्रवेश सन १६१५ में हुआ, उन्होंने १६१६ में लखनऊ में होने वाले कांग्रेस-अधिवेशन में भाग लिया। कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ में हुई थी तब से लेकर अब तक उसकी समस्त कार्रवाई, अधिवेशन की वक्तृताएँ आदि अंग्रेजी भाषा के माध्यम से होती थी। लखनऊ-कांग्रेस में पहली बार गाँधी जी ने अपना भाषण हिन्दी में दिया, सभासदों और पत्रकारों ने बड़ा विरोध किया लेकिन गाँधी जी हिन्दी में ही बोलते रहे। सन् १६१७ में सरकार द्वारा आमंत्रित युद्ध-सम्मेलन में भी उन्होंने अपना एक वाक्य का भाषण हिन्दी में किया। हिन्दी के प्रति गाँधी जी के इस प्रेम ने हिन्दी के प्रचार में बिजली-सी शक्ति प्रदान की, दूसरी ओर हिन्दी के इस प्रेम से गाँधी जी की लोक-प्रियता में भी वृद्धि हुई। गाँधी जी की प्रेरणा के फलस्वरूप सन् १६१८ से कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में अंग्रेजी के साथ हिन्दी का भी प्रयोग होने लगा। कांग्रेस द्वारा हिन्दी का अपनाया जाना उसके राष्ट्र-भाषा पद की ही प्रकारान्तर से स्वीकृति थी। पर उस हिन्दी का स्वरूप गाँधी जी के मत में 'हिन्दुस्थानी' या 'हिन्दुस्तानी' का था, जो उर्दू-मिश्रित हिन्दी हो सकती थी। गाँधी जी सन् १६१८ और सन् १६३५ में दो बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति हुए।

(४) गाँधी जी की प्रेरणा से दक्षिण भारत में हिन्दी का प्रचार करने के लिए, सम्मेलन के १६१८ के इन्दौर अधिवेशन के अनुसार स्वामी सत्यदेव परिव्राजक और देवदास गाँधी को मद्रास भेजा गया। और दक्षिण भारत से ३० युवक हिन्दी सीखने के लिए सम्मेलन के हिन्दी-विद्यापीठ प्रयाग आये, इनमें मुख्य थे श्री हरिहर शर्मा, श्री क० म० श्रीराम शर्मा, सीताराम और सत्यनारायण। और तभी सन् १६१८ में मद्रास के जार्ज टाउन में हिन्दी-साहित्य

सम्मेलन का प्रचार-कार्यालय खोला गया। १९२७ मे उस कार्यालय ने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा—एक स्वतन्त्र सस्था का रूप ले लिया।

(५) महात्मा गाँधी की प्रेरणा से सन १९२० मे गुजरात विद्यापीठ की स्थापना हुई, जिसमे हिन्दी के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। पहले नागरी और फारसी दोनो यहाँ पढाई जाती थी। सविधान मे हिन्दी तथा नागरी लिपि के स्वीकार किये जाने के बाद विद्यापीठ ने भी फारसी लिपि का आग्रह छोड़ दिया है। इसी प्रकार सन १९२१ मे राष्ट्रीय नेताओ ने हिन्दी-माध्यम से उच्च शिक्षा देने के लिए काशी-विद्यापीठ का स्थापना की।

(६) २० जनवरी सन् १९२७ को सयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) की सरकार की प्रेरणा से तेजबहादुर सप्रू की अध्यक्षता मे 'हिन्दुस्तानी अकादमी' की स्थापना प्रयाग मे हुई। यह अकादमी हिन्दी और उर्दू दोनो भाषाओ के साहित्य के प्रचार, अभिवृद्धि और प्रोत्साहन के लिए थी।

(७) राष्ट्रभाषा हिन्दी और देवनागरी लिपि का प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से सन् १९३५ मे हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद की स्थापना हुई।

(८) सन् १९३६ मे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के नागपुर-अधिवेशन के अवसर पर महात्मा गाँधी की प्रेरणा से भारत के पश्चिमी और पूर्वी भाग मे हिन्दी के प्रचार के लिए सम्मेलन की अंगभूत सस्था के रूप मे हिन्दी-प्रचार-समिति का सगठन किया गया, इसका कार्यालय वर्धा मे हुआ। सन् १९३८ मे सम्मेलन के एक निर्णय के अनुसार इसका नाम राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति वर्धा हुआ। प्रत्येक अहिन्दी भाषी प्रदेशो मे, जिनमे उत्तर के कश्मीर और पजाब भी सम्मिलित है, इसकी शाखाएँ स्थापित हुई। समिति ने सम्मेलन से अलग अपनी नई परीक्षाएँ चलाई। उनमे अहिन्दी-भाषी प्रदेशो मे हिन्दी का अत्यन्त व्यापक प्रचार हुआ और हो रहा है।

(९) हिन्दी और हिन्दुस्तानी को लेकर सम्मेलन से महात्मा गाँधी का सन् १९४१ मे मतभेद हो गया। उन्होंने राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से 'हिन्दुस्तानी' रूप मे राष्ट्रभाषा की कल्पना की। २ मई सन् १९४२ को उनकी प्रेरणा से हिन्दुस्तानी प्रचार-समिति वर्धा की स्थापना हुई। इसके सदस्यों में

पं० जवाहरलाल नेहरू, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, मौलाना अबुलकलाम आजाद जैसे राष्ट्रीय नेता थे। बाद में इसका काम गुजरात विद्यापीठ को सौंपा गया। इस समिति ने फारसी और नागरी दोनों लिपियों में अपनी परीक्षाएँ सचालित की।

(१०) ११ अप्रैल सन १९४७ को बिहार की विधान-सभा ने बिहार-राष्टभाषा-परिषद् की स्थापना पटना मे की। इसका उद्देश्य राष्ट्रभाषा मे विविध विषयो के मौलिक ग्रन्थो का प्रकाशन और बिहार की बोलियो का अनुशीलन है। परिषद् का विधिवत् कार्य १९ जुलाई १९५० से श्री शिवपूजन सहाय के इसके मंत्री नियुक्त होने के साथ आरम्भ हुआ।

(११) इस अवधि मे स्थापित तीन अन्य सस्थाओ का भी उल्लेख हिन्दी-प्रचार की दृष्टि से किया जाना चाहिए, इनकी परीक्षाओ और प्रकाशनो ने हिन्दी के प्रति अनुराग पैदा किया है और हिन्दी भाषा तथा साहित्य के प्रचार एव अभिवृद्धि मे सहायता की है, ये सस्थाएँ है—(क) महिला विद्यापीठ प्रयाग (सन् १९२२), (ख) हिन्दी विद्यापीठ देवघर (सवत् १९८६ वि०—सन १९२९) (ग) महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूर्णे (सन् १९४५)।

(१२) १५ अगस्त १९४७ मे देश को स्वराज्य प्राप्त हुआ। उसी के साथ हिन्दी को समग्र रूप से राष्ट्रभाषा का पद मिलने की आशा भी राष्ट्रभाषा-प्रेमियो को थी। परन्तु जैसे स्वराज्य देश के विभाजन के साथ प्राप्त हुआ, वैसे ही २६ जनवरी १९५० को भारत का जो संविधान समद् तथा राष्ट्रपति के द्वारा स्वीकृत हुआ उसमे भी हिन्दी को राजभाषा का पद तो मिला किन्तु साथ-साथ अग्रेजी भाषा के प्रयोग के लिए पन्द्रह वर्ष की अवधि रखी गयी। अंग्रेजी के प्रयोग के साथ सविधान द्वारा राजभाषा हिन्दी और नागरी लिपि के प्रयोग की स्वीकृति, संयुक्त प्रान्त (अग्रेज) सरकार की १८ अप्रैल १९०० की उस विज्ञप्ति के समकक्ष थी जिसमे अदालतो और दफ्तरो के कार्य मे उर्दू भाषा और फारसी लिपि के साथ हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के प्रयोग का आवश्यक कहा गया था, तथा सरकारी क्लर्कों और अफसरो को नागरी अक्षरो का ज्ञान प्राप्त करने का निदेश किया गया था। न तो सन्

१९०० के बाद सरकारी अदालतों में हिन्दी भाषा और नागरी लिपि को उचित स्थान प्राप्त हुआ और न आज पन्द्रह वर्ष की अवधि बीत जाने के बाद भी देश के संघात्मक गणतंत्र शासन में हिन्दी भाषा और नागरी लिपि प्रतिष्ठित हो सकी।

संविधान में राजभाषा हिन्दी और देवनागरी लिपि की स्वीकृति का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है—

"धारा ३४३ (१) संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होनेवाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।

(२) खंड (१) से किसी बात के होते हुए भी इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष की कालावधि के लिए संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिए ऐसे प्रारम्भ के ठीक पहले वह प्रयोग की जाती है—

परन्तु राष्ट्रपति उक्त कालावधि में, आदेश द्वारा संघ के राजकीय प्रयोजनों से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग अधिकृत कर सकेंगे।

(३) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी संसद् उक्त पन्द्रह साल की कालावधि के पश्चात् विधि द्वारा—

(क) अंग्रेजी भाषा का, अथवा

(ख) अंकों के देवनागरी रूप का,

ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबन्धित कर सकेगी जैसा कि ऐसी विधि में उल्लिखित हो।"

संविधान के द्वारा राज्य के विधानमण्डल भी अंग्रेजी, हिन्दी या राज्य की भाषाओं में से किसी के प्रयोग के लिए स्वतंत्र थे—

"धारा ३४५ अनुच्छेद ३४६ और ३४७ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से

सब या किसी के लिए प्रयोग के अर्थ इस राज्य में प्रयुक्त होनेवाली भाषाओं में से किसी एक या अनेक को या हिन्दी को अंगीकार कर सकेगा।

परन्तु जब तक राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा इससे अन्यथा उपबन्ध न करे तब तक राज्य के भीतर उन राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिए इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी।

१९५० तक के संघर्ष का निष्कर्ष

इस प्रकार सन् १९०१ से १९५० तक की अवधि में हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के प्रचार का अत्यन्त व्यापक प्रयास हुआ। भारत के दक्षिणी, पश्चिमी और पूर्वी अहिन्दी भाषी प्रदेशों में नागरी लिपि और हिन्दी को सीखने के लिए सहज आकर्षण पैदा हुआ। अहिन्दी-भाषी प्रदेशों में हिन्दी के समर्थ लेखक भी पैदा हुए. यह हिन्दी की व्यापकता और लोकप्रियता का प्रमाण है, इन लेखकों में डा० रांगेयराघव, श्री अनन्तगोपाल शेवड़े जैसे माने-जाने लेखक हैं।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन प्रयाग और उससे सम्बद्ध संस्थाओं ने हिन्दी-भाषा और नागरी लिपि के विस्तार में वैसे ही मनोयोग दिया जैसे राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए। अनेक अहिन्दी-भाषी राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं और विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से राष्ट्रभाषा के योग्य हिन्दी की उपयुक्तता स्वीकार की है। जिनमें लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्री सुभाषचन्द्र बोस, श्री श्रीनिवास शास्त्री, डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, श्रीमती अम्बु जम्बाल, श्री नरसिंह चिन्तामणि, डा० रामकृष्ण भंडारकर, श्री फजल अली, श्री ख्वजा हसन निजामी और श्री जोश मलीहाबादी के नाम प्रमुख हैं। इस अर्धशती के पिछले वर्षों में गाँधी जी के प्रभाव से हिन्दुस्तानी का जो समर्थन प्रारम्भ हुआ उससे अब हिन्दी का संघर्ष उर्दू के स्थान पर हिन्दुस्तानी से ही रहा। परन्तु स्वराज्य प्राप्ति के बाद देश के बँटवारे में स्थिति बदल गई, जिस राष्ट्रीय एकता के लिए

हिन्दुस्तानी भाषा और नागरी लिपि एवं फारसी लिपि का समर्थन हो रहा था, उस एकता के भग हो जाने पर हिन्दुस्तानी और फारसी लिपि का प्रश्न ही दूर हो गया। इस प्रश्न के दूर हो जाने पर हिन्दी के विरोधियो ने हिन्दी भाषा को अभी राजकाज के अनुपयुक्त बता कर तथा १४ विभिन्न भाषाओवाले देश मे एकता कायम रखने के लिए हिन्दुस्तानी के स्थान पर अंग्रेजी को खडा कर दिया और हिन्दी के बहिष्कार के लिए पूरा प्रयास करते रहे, इसमे वे अभी तक सफल है, आगे देखिए क्या होता है ? अर्थात् व्यवहार मे राजभाषा आज भी अग्रेजी है।

स्वराज्य मिलने के साथ राज्यो मे उत्तरप्रदेश ने अक्तूबर १९४७ मे ही हिन्दी को राजभाषा घोषित किया। सविधान के अनुसार पुनः उसने सन १९५१ मे राजभाषा अधिनियम पारित किया, जिसके अनुसार राज्य के राजकीय प्रयोजनो के लिए देवनागरी लिपि मे हिन्दी को अगीकार किया गया। बिहार प्रदेश ने सन १९५० मे राजभाषा अधिनियम पास किया और राजकाज के पूर्णतया हिन्दीकरण के लिए दस वर्ष की अवधि रखी, उसने नागरी लिपि मे लिखी हिन्दी को राजभाषा की मान्यता दी। राजस्थान सरकार ने सन् १९५२ मे राजस्थान-राजभाषा-अधिनियम पारित कर हिन्दी को प्रदेश की राजभाषा घोषित किया। मध्यप्रदेश ने राजभाषा अधिनियम पारित कर हिन्दी तथा मराठी दोनो भाषाओ को राज्य की राजभाषा घोषित किया। तब मध्यप्रदेश मे मराठी भाषी जिले भी सम्मिलित थे।

किन्तु सही तथ्य यह है कि उक्तप्रदेशो की सरकारो ने (केवल बिहार को छोड कर) हिन्दी को राजभाषा घोषित करके भी अपनी घोषणा का व्यवहार रूप मे परिणत न किया। घोषणा का व्यावहारिक रूप सन् १९६८ मे दिखाई पडता है।

३
'हिन्दी' नाम का इतिहास

'सिन्धु' का बिगड़ा हुआ रूप 'हिन्दू' ईरानी भाषाओं में प्रयुक्त शब्द है। 'हिन्दु' का पहला प्रयोग जरथुश्त्र की लिखी पारसीधर्म की मूल पुस्तक जेन्दा-वेस्ता (७०० ई० पू०—२ री शती ई०) में मिलता है। 'हिन्दु' या 'हिन्द' देश का नाम है और 'हिन्दी' इस देश के निवासियों की संज्ञा है। 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग हिन्द देश के निवासी के अर्थ में किया गया है—

हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा। (डा० इकबाल)

कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग ३, पृष्ठ २ के अनुसार कालिंजर के हिन्दू-नरेश ने बिना हौदे और महावत के हाथियों पर सरलता से सवारी करनेवाले तुर्कों की प्रशंसा में हिन्दी भाषा में कुछ पद्य लिखे जिसे महमूद गजनवी ने अपने दरबार में हिन्दू विद्वानों को दिखाया था। महमूद गजनवी का आक्रमण सन् १००१ से १०२३ तक १७ बार भारत पर हुआ, अतः मानना पड़ेगा कि ग्यारहवीं शती में भारतीयों की भाषा के लिए हिन्दी की संज्ञा प्रचलित हो गई थी। प्राचीन मुसलमान-इतिहासकारों में प्रसिद्ध इतिहास-कार फरिश्ता ने बहमनीराज्य (सन् १३४७) में राजकाज के लिए हिन्दी ज़ुबान के प्रयोग की बात लिखी है। इतना तो निश्चित है कि भारत के मध्य भाग में बोली जानेवाली भाषा के लिए 'हिन्दी' नाम मुसलमानों का ही दिया हुआ है। क्योंकि मुसलमानों के समकाल ही हिन्दी के वरिष्ठ कवियों ने संस्कृत की तुलना में अपनी काव्य-वाणी को भाषा कहा है। विद्यापति (चौदहवीं शती उत्तरार्ध) ने लिखा है—

बालचंद विज्जावइ भासा।
दुहुं नहिं लग्गइ दुज्जन हासा॥

कबीर (पन्द्रहवी शती) ने भाखा को बहता हुआ निर्मल जल कहा है—

कबिरा संस्कृत कूप जल, **भाखा** बहता नीर।

तुलसीदास (सोलहवी शती उत्तरार्ध) का निवेदन था—

भाषा-भनिति मोरि मति थोरी।
हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी॥

हमारी इस भाषा को 'हिन्दुस्तानी' संज्ञा भी दी गयी है। यह नाम अंग्रेजों ने दिया। फोर्ट विलियम कालिज कलकत्ता के प्रिंसिपल जान गिलक्राइस्ट ने सन १८०३ मे हिन्दी-गद्य की जो पुस्तकें लिखवाई उनकी भाषा को वे हिन्दुस्तानी कहते थे। पर उनका 'हिन्दुस्तानी' नाम विशुद्ध हिन्दी से भिन्न उर्दू-प्रभावित शैली के लिए था। वे विशुद्ध हिन्दी को अशिष्ट शैली या हिन्दवी कहते थे। कैप्टेन विलियम प्राइस (सन १८२३) ने, जो फोर्ट विलियम कालिज कलकत्ता के हिन्दुस्तानी-विभाग के अध्यक्ष थे, हिन्दुस्तानी को हिन्दी से अलग एक भाषा के रूप में स्वीकार किया और हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी दोनों की सत्ता स्वीकार की। उनके पीछे राजकाज मे रहनेवाले अंग्रेजो ने प्रायः हिन्दी को हिन्दुस्तानी भाषा कहा है और भाषा का अध्ययन करने वाले अंग्रेजो ने इसे हिन्दी नाम से पुकारा है। हिन्दी के प्रथम समाचारपत्र उदंत मार्तंड (सन् १८२६) ने खडीबोली को 'मध्य देश की भाषा' कहा था। फ्रेडरिक जानशोर (सन् १८३६) के मत मे कुमायूँ तथा गढ़वाल प्रान्तों के पुलिस की रिपोर्ट तथा कचहरी के कागज हिन्दुस्तानी भाषा तथा नागरी लिपि मे लिखे जाते थे। डा० ग्रियर्सन (सन् १८८२) के मत मे उक्त हिन्दुस्तानी या हिन्दी भाषा अंग्रेज सरकार के आदेशानुसार उन्नीसवी शती के आरम्भ में नई बनाई हुई भाषा थी, हिन्दी का अस्तित्व एक बोली से अधिक नही था। सन् १८३६ के एक सरकारी इश्तहारनामा मे हिन्दी बोली मे हुक्म लिखने का निर्देश किया गया था और फारसी को जबान संज्ञा दी गई थी। पादरी केल्लाग (सन् १८७५) ने स्वीकार किया था कि भारत के एक चौथाई भाग अर्थात् २५ करोड़ की आबादी मे ६-७ करोड की भाषा हिन्दी है।

फ्रांसीसी विद्वान् गार्सां द तासी (सन् १८५२) ने हिन्दुस्तानी उर्दू को मुसलमानों की भाषा कहा है जो पश्चिमोत्तर प्रदेश की सरकार की भाषा नियत की गई थी। हिन्दी उससे अलग थी। मुसलमान बादशाह फारसी भाषा का प्रयोग करते थे, साथ में वे एक हिन्दी-नवीस भी रखते थे, अंग्रेज-सरकार ने फारसी के स्थान पर हिन्दुस्तानी उर्दू को अपने राजकाज की भाषा बनाया और हिन्दी का भी पहले की तरह गौण स्थान बना रहा। यहाँ हिन्दुस्तानी उर्दू से गार्सां द तासी का तात्पर्य उर्दू से ही है। ग्रियर्सन के पूर्व इन्होंने भी हिन्दी को एक बोली से अधिक महत्त्व नहीं दिया है। जान गिलक्राइस्ट ने सन् १८०३ में हिन्दुस्तानी का जो रूप समझा था, गार्सां द तासी की हिन्दुस्तानी उससे भिन्न थी।

महात्मा गाँधी ने राष्ट्रभाषा के लिए जो हिन्दुस्तानी नाम पसन्द किया वह हिन्दी और उर्दू के बीच की, दोनों की निकटतम सरल शैली थी, सच पूछा जाय तो गाँधी जी के प्रयास से सन् १९३५ के बाद एक नई हिन्दुस्तानी भाषा बनाई गई। इस हिन्दुस्तानी के लिए नागरी और फारसी दोनों लिपियाँ अपनाई गई। इसमें संस्कृत के साथ अरबी-फारसी शब्दों का बहिष्कार तो हुआ पर इसका झुकाव फारसी की ओर ही रहा। हिन्दुस्तानी का यह निर्माण राजनीतिक बुनियाद पर राष्ट्रीय एकता के दृष्टिकोण से हुआ था।

आज 'हिन्दी' नाम से सर्वमान्य या साहित्यिक—खड़ीबोली हिन्दी का तात्पर्य ग्रहण किया जाता है। खड़ीबोली (नागरी) ही हिन्दी का मानक रूप है, इसके प्रचार-प्रसार की लम्बी कहानी का, जिसका विस्तार तेरहवीं शती से बीसवीं शती तक है, पीछे एक सिंहावलोकन किया गया है और इसके इतिहास की प्रायः सभी प्रमुख तिथियों की चर्चा कर दी गई है। खड़ीबोली हिन्दी का मूल स्वरूप है, खड़ीबोली नाम इसकी प्रकृति और गुण पर मिला है। इस बोली का क्षेत्र मेरठ, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर के जिले, बुलन्दशहर जिला का कुछ भाग और दिल्ली के आस-पास का क्षेत्र है, प्राचीनकाल में इस भूभाग को कुरु-प्रदेश कहा जाता था, महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इसीलिए इस बोली को 'कौरवी' नाम दिया है।

हिन्दी-भाषी प्रदेश, भारत के मध्य भाग या मध्यदेश, की हिन्दी-बोलियों में खड़ीबोली का स्वरूप अन्य बोलियों की अपेक्षा व्यापक और क्षमता-पूर्ण है। इसकी व्यापकता की चर्चा पीछे की गई है, भारत के अन्य भागों के हिन्दी कवियों की वाणी में भी इसके स्वरूप का प्रयोग हुआ है। यह व्यापकता भी इसकी क्षमता की द्योतक है। नागरी लिपि में जो वैज्ञानिकता है, हिन्दी के इस स्वरूप में भी भाषा की दृष्टि से वही वैज्ञानिकता है। राम और कृष्ण के धार्मिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलनों की भूमि की बोली न होने के कारण इसे अपने विकास में पीछे रह जाना पड़ा, लेकिन जब इसको अवसर मिला तब इसने न केवल ब्रज और अवधी भाषाओं को ही आक्रान्त कर लिया उनका सत्ता बोली मात्र में सीमित कर दी, और अपने वैज्ञानिक स्वरूप के कारण पूरे राष्ट्र के लिए यह प्रिय बन गई भारत में पहली बार इसने भाषा की दृष्टि से वह स्थान प्राप्त किया जो कभी संस्कृत को प्राप्त था। आर्य-समाज ने इसके महत्त्व का आकलन उन्नीसवीं शती के अन्त में ही कर लिया था और इसे वे आर्य-भाषा कहते थे। हिन्दी के महत्त्वपूर्ण विकास और बढ़ती हुई लोकप्रियता में उसकी वैज्ञानिक लिपि नागरी का भी बहुत बड़ा योगदान है, यह तथ्य भी हिन्दी-प्रचार के इतिहास का एक पक्ष स्वीकार किया जाना चाहिए।
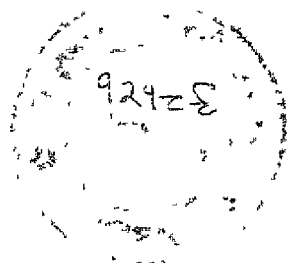
४

संस्थाएँ

हिन्दी और नागरी लिपि के प्रचार-कार्य का आन्दोलनात्मक रूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में ही शुरू हुआ था। तब इस प्रचार और आन्दोलन में हिन्दी के लेखकों और पत्रों के सम्पादकों ने ही प्रमुख रूप से भाग लिया, हिन्दी के हित की विशेष चिन्ता जिनको हुई उनमें हिन्दी में लिखने-पढ़ने का शौक था और वे साहित्य के जिज्ञासु थे। हिन्दी के प्रचार-कार्य के लिए संस्थाओं की स्थापना भी हुई परन्तु तब की वे संस्थाएँ पत्रकारों या लेखकों की संस्थाएँ थीं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार की संस्थाओं में लेखकों के अतिरिक्त जनता का पूर्ण प्रतिनिधित्व भारतेन्दु जी के बाद दिखाई पड़ता है। उनके समय में स्थापित बाबू तोताराम द्वारा संचालित 'भाषा सवर्द्धिनी सभा अलीगढ़', प्रयाग की 'हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्य सभा' (सन् १८८४) ऐसी ही संस्थाएँ थीं, जो अपने संचालकों के साथ ही समाप्त हो गईं। भारतेन्दु जी स्वयं अपने में एक संस्था थे। उस काल के इन लेखकों द्वारा संचालित पत्र-पत्रिकाओं को भी एक संस्था का ही छोटा-मोटा रूप समझना चाहिए। भारतेन्दु की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (सन् १८७३), पं० बालकृष्ण भट्ट का 'हिन्दी-प्रदीप' (सन् १८७६) और पं० प्रताप नारायण मिश्र का 'ब्राह्मण' पत्र ऐसे मासिक अखबार थे, जिनके लेखक-पाठक अपने को उनका अंग समझते थे और सभी का उद्देश्य था—हिन्दी तथा नागरी का प्रचार करना। 'भाषा-सवर्धिनी सभा' के संस्थापक बाबू तोताराम भी 'भारत-बन्धु' नाम का पत्र निकालते थे। दूसरे शब्दों में पत्र (अखबार) ही संस्था थे बीसवीं शती के म

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'सरस्वती पत्रिका' भी उनके समय तक बहुत कुछ एक संस्था का रूप थी, जिसका उद्देश्य रचनात्मक था अर्थात् हिन्दी में योग्य लेखक पैदा करना, हिन्दी के साहित्यिक रूप का सुधार करना, उसकी शैली को विकृत होने से बचाना। ऐसी संस्थाएँ व्यक्तियों के साथ ही जीवित रह रही थीं।

हिन्दी का प्रचार करनेवाली जनता की संस्था के रूप में सर्वप्रथम नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी का नाम सामने आता है। तो भी नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी के पूर्व भारतेन्दु काल की एक अन्य संस्था का विस्तृत परिचय हिन्दी के प्रचार-कार्य के प्रसंग में यहाँ आवश्यक है, वह है—मेरठ की देवनागरी-प्रचारिणी-सभा।

१—देवनागरी प्रचारिणी सभा, मेरठ

इस सभा की स्थापना पं० गौरीदत्त शर्मा तथा मेरठ के हिन्दी-प्रेमियों की प्रेरणा से सन् १८८१ में की गई थी। पं० गौरीदत्त जी शर्मा इस सभा के उपमंत्री रहे हैं। इस सभा को महाराज रीवाँ, टिहरी-नरेश और कूटेश्वराधीश श्री राव उमराव सिंह ने आर्थिक सहायताएँ दी थीं।

उस समय सरकारी दफ्तरों में हिन्दी में कामकाज करने के लिए जो कठिनाई उत्पन्न होती थी उन कठिनाइयों में हिन्दी सीखने के लिए व्याकरण की पुस्तक का और हिन्दी शब्द-कोश का भी अभाव था। हिन्दी को सम्पन्न भाषा कहने के लिए इसमें किसी समृद्ध शब्द-कोश का होना बहुत जरूरी था। बहुत बाद में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने बृहत् हिन्दी शब्दसागर तैयार करवा कर इसकी पूर्ति की। परन्तु इस प्रसंग में देवनागरी प्रचारिणी सभा, मेरठ का प्रारंभिक प्रयास भी प्रशंसनीय है, सभा के निश्चय के अनुसार और अन्य विद्वानों के अनुरोध पर उनकी सहायता लेकर पं० गौरीदत्त शर्मा ने पाँच वर्ष के श्रम के बाद एक 'गौरी नागरी-कोष' तैयार किया, जो सन् १९०१ में प्रकाशित हुआ था। इस कोष में जीवन के व्यवहार और अदालतों, दफ्तरों के प्रयोग में आनेवाले हिन्दी-उर्दू शब्दों का संग्रह है, जिनका अर्थ

पहले नागरी लिपि और हिन्दी भाषा में दिया गया है और पुनः उसी के साथ रोमन लिपि और अंग्रेजी भाषा मे भी उनका अर्थ है। अंग्रेजी भाषा में अर्थ देने का अर्थ ही है कि यह कोश अंग्रेजी सरकार की अदालतों और दफ्तरो मे हिन्दी के प्रचार की दृष्टि से तैयार किया गया था। पं० गौरीदत्त शर्मा ने उर्दू को हिन्दी से अलग नहीं माना है, उन्होंने कोश की भूमिका, पृष्ठ ५ मे लिखा है—"यह देशी भाषा (वर्नेक्यूलर) का नागरी अक्षरो मे कोष है (जो भाषा इस देश के बड़े-बड़े शहरो के बाजारो मे बोली जाती है वह देशी भाषा कहलाती है), इसी देशी भाषा को हिन्दू हिन्दी और मुसलमान उर्दू कहते है। इसमे कोई सन्देह नही है कि हिन्दी-उर्दू दोनो एक है।" यह कोश ५२८ पृष्ठो का है, इसमें लगभग १६००० शब्द है। नागरी अक्षरो और हिन्दी के प्रचार के लिए शर्मा जी ने अन्य पुस्तकें भी लिखी थी, उनमे उल्लेखनीय है—अक्षर-दीपिका, नागरी के दफ्तर, उर्दू और फारसी अक्षरो से हानि।

सन् १८८२ में सरकार ने जो शिक्षा-आयोग कायम किया था, उसके समक्ष देवनागरी प्रचारिणी सभा के प्रतिनिधि दल ने भी नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के समर्थन में अपना प्रतिवेदन दिया था। उक्त कोश की भूमिका में इसका जिक्र है, साथ ही पश्चिमोत्तर प्रदेश के गवर्नर महोदय के १८ अप्रैल १९०० के, दफ्तरो मे नागरी प्रवेश के, आदेश पर सन्तोष प्रकट किया गया है—"सन् १८८२ ई० मे हम लोगों ने इज्यूकेशनल कमीशन के रूबरू यह सिद्ध कर दिया था और प्रकट किया था कि इस देश के सर्वसाधारण मे नागरी अक्षरों के द्वारा प्राईमरी शिक्षा बहुत जल्दी फैल सक्ती है इस नियम पर कि इस देश के दफ्तरो मे नागरी अक्षर जारी कर दिये जायँ। अन्य देश की भाषाओ के अक्षरो द्वारा इस देश के सर्वसाधारण मे कदापि प्राईमरी शिक्षा नहीं फैल सक्ती। तब से अब तक हम लोग अपने अभिप्राय को मजबूत करने के लिए अपनी गवर्नमेन्ट को बराबर याद दिलाते रहे और मिमोरियल भेजते रहे और सच्चे दिल से बड़ी आधीनताई के साथ प्रार्थना करते रहे। १८ वर्ष से यह हमारा मुकद्दमा गवर्नमेन्ट में पेश था अन्त को श्रीयुत श्रीमान महराजाधिराज सर एन्टोनी मेकडानल पश्चिमोत्तर देश के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और अवध देश

के चीफ कमिश्नर बहादुर ने १८ तारीख एप्रिल सन् १६०० को रिजोल्यूशन पास करके इस देश के दफ्तरों में नागरी प्रचार की आज्ञा दे दी और इसी तारीख के गवर्नमेन्ट गजट मे छाप दिया।" (भूमिका पृष्ठ ४)

ऊपर शर्मा जी ने सरकार को बराबर मिमोरियल भेजने की बात लिखी है। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि २ मार्च १८६८ ई० को जब नागरी-प्रचारिणी सभा काशी के प्रयत्नो से पं० मदन मोहन मालवीय के नेतृत्व मे गवर्नर महोदय को नागरी के सम्बन्ध मे ऐतिहासिक प्रार्थना-पत्र दिया गया तब उसका अनुसरण करते हुए देवनागरी प्रचारिणी सभा मेरठ ने भी १८६६ मे एक मिमोरियल गवर्नर महोदय के पास भेजा था।

सभा के पास एक देवनागरी पुस्तकालय भी रहा है।

यद्यपि उक्त कार्यो में पं० गौरीदत्त शर्मा ही प्रमुख रहे हैं तो भी उन्होंने देवनागरी प्रचारिणी सभा के नाम पर ही सारा काम किया है। सभा के सदस्य के रूप मे उनके सहयोगियो की सम्मति और सहायता से सारा काम होता रहा है। अब सभा का अस्तित्व नही है तो भी सभा की देख-रेख में निर्मित 'गौरी नागरी कोष' के लिए हिन्दी की प्रचार-संस्थाओ के इतिहास मे देवनागरी प्रचारिणी सभा, मेरठ का नाम अवश्य लिया जाना चाहिए।

२—नागरी प्रचारणी सभा, काशी

इस सभा की स्थापना नागरी-प्रचार के उद्देश्य से सौर २७ फाल्गुन संवत् १६४६ (१० मार्च १८६३) को हुई। यह महत्त्वपूर्ण काम काशी-क्वींस कालेज की ९वीं कक्षा के कुछ उत्साही छात्रो का था। उन्होंने अपने उद्देश्य के अनु-सार इसका नाम नागरी-प्रचारिणी-सभा रखा। इन छात्रों में प्रमुख कार्यकर्ता थे—गोपाल प्रसाद खत्री, रामसूरत मिश्र, उमराव सिंह, शिवकुमार सिंह तथा रामनारायण मिश्र। बाद मे श्यामसुन्दर दास जी का सहयोग इस सभा को प्राप्त हुआ और वे इसके मंत्री नियुक्त हुए। आगे चल कर शीघ्र ही छात्रो की इस सभा को तत्कालीन गण्यमान महानुभावो, विद्वानों और हिन्दी-प्रेमियों का सहयोग

प्राप्त हुआ। उन्होने इसकी सदस्यता स्वीकार की। श्री राधाकृष्ण दास (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई) इसके प्रथम अधिवेशन के सभापति हुए। सभा के प्रथम वर्ष में ही अन्य प्रमुख सहयोगियो और सदस्यो के नाम है—महामना मदनमोहन मालवीय, कालाकांकर नरेश रामपाल सिंह, राजा शशिशेखर राय, अम्बिकादत्त व्यास, चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन', राधाचरण गोस्वामी, श्रीधर पाठक, ज्वालादत्त शर्मा (लाहौर), नन्दकिशोर देव शर्मा (अमृतसर), कुँवर जोधसिंह मेहता (उदयपुर), समर्थदान (अजमेर), डॉ० सर जार्ज ग्रियर्सन। पं० मदनमोहन मालवीय ने सभा के माध्यम से ही हिन्दी-प्रचार का महत्त्वपूर्ण कार्य सरकार से संघर्ष ले कर किया।

उद्देश्य

नागरी लिपि और हिन्दी के प्रचार के साथ सभा ने ठोस रचनात्मक कार्यों को भी हाथ में लिया, वे कार्य है—प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज, हिन्दी के बृहत् शब्द कोश का निर्माण, हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास का निर्माण, अन्य विषयो के मानक ग्रन्थो का प्रकाशन।

कार्य

सन् १८९६ मे सरकार जब अपने दफ्तरो और अदालतो मे रोमन लिपि के प्रयोग का संकल्प दृढ कर रही थी और नागरी लिपि के प्रयोग की माँग का दरवाजा सदा के लिए बन्द कर रही थी तब सभा ने 'नागरी कैरेक्टर' नाम की अंग्रेजी मे एक पुस्तिका प्रकाशित की, जिसमे नागरी लिपि के प्रयोग की अच्छाइयो और रोमन लिपि के दोषों पर भलीभाँति प्रकाश डाला गया था। उसका वितरण सभा ने सरकार, अफसरो और जनता मे किया। फलतः सरकार ने अपनी नियुक्त-समिति की सिफारिश पर भी रोमन अक्षरो के प्रयोग का विचार बदल दिया।

२ मार्च १८९८ ई० को इलाहाबाद मे लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर एण्टोनी मेकडानेल महोदय को महामना पं० मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व मे १६ जिलो मे ६० हजार हस्ताक्षरो से संयुक्त जो प्रार्थना-पत्र अदालतों में नागरी

लिपि के प्रयोग के लिए दिया गया, उसके लिए इतने हस्ताक्षर इकट्ठे करने का श्रमसाध्य कार्य सभा के उत्साही कार्यकर्ताओं ने सम्पन्न किया था, उन्होंने दिन को दिन और रात को रात न समझ कर अनवरत प्रयास किया था। इस प्रयास का भी यह परिणाम था कि १८ अप्रैल १९०० को गवर्नर महोदय ने विज्ञप्ति निकाल कर फारसी लिपि और उर्दू भाषा के साथ नागरी लिपि और हिन्दी भाषा का प्रयोग भी अदालतों में अनिवार्य कर दिया, यद्यपि प्रयोग की यह अनिवार्यता अदालतों को एक सीमा तक ही थी।

सभा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य हिन्दी के बृहत् कोश का निर्माण था। उसने इस उद्देश्य से सात खंडों में 'हिन्दी शब्द सागर' का प्रकाशन किया है। यह अत्यन्त श्रम-साध्य और व्यय-साध्य कार्य था। इसके सम्पादन में सन् १९०८ से सन् १९२८ तक का २१ वर्ष का समय लगा है। इसमें ४२८१ पृष्ठ हैं और कुल शब्द-संख्या ९३११५ है। शब्दकोश को लेकर इतना गौरव-मय प्रकाशन सभा ने ही किया। ३० वर्ष बाद जब हिन्दी का शब्द-भंडार बहुत बढ़ गया, ज्ञान-विज्ञान के अनेक नये शब्द अपने आप अस्तित्व में आने लगे तब इस शब्दसागर के संशोधन और परिवर्धन की आवश्यकता प्रतीत हुई। प्रसन्नता की बात है कि सभा ने उसमें हाथ लगाया, उसे केन्द्रीय सरकार का इसके लिए आर्थिक अनुदान भी प्राप्त हुआ, यह कार्य सभा ने सन् १९५४ में आरम्भ किया था और अब संशोधन-परिवर्धन का कार्य समाप्त हो चुका है, संशोधित, परिवर्धित शब्दसागर का पहला खंड सन् १९६५ में प्रकाशित हुआ। उसके प्रकाशन का उद्घाटन प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा सन् १९६५ को प्रयाग के राजभवन में सम्पन्न हुआ है।

हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज की ओर सर्वप्रथम ध्यान सभा ने दिया। शुरू में उसने यह कार्य एशियाटिक सोसायटी (बंगाल) के माध्यम से करवाया, सन् १९०० के बाद उसने यह कार्य स्वतन्त्र रूप से आरम्भ किया। उसे इस महत्त्वपूर्ण कार्य में डा० काशीप्रसाद जायसवाल, महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा और डा० हीरालाल जैसे सुविख्यात विद्वानों का सहयोग प्राप्त रहा है इन हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज से हिन्दी-साहित्य ने

इतिहास-लेखन की सामग्री परिपूर्ण हुई है। सन् १९२८ तक सभा को खोज में ६०० महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थ मिले थे। इधर सभा ने जो संक्षिप्त खोज-विवरण दो भागों में प्रकाशित किया है उनमें ६५९० ग्रंथकारों एवं १५८८२ ग्रंथों से सम्बद्ध तथ्यों की टिप्पणी-सहित नामानुक्रमणी दी गई है। सभा ने यह खोज-कार्य हिन्दीभाषी प्रदेशों में करवाया है। द्रव्याभाव में यह काम उतनी तेजी से नहीं हो सका है जितना चाहिए था। हस्तलिखित ग्रन्थों के खोज-विवरण को क्रमशः सम्पादित कर प्रकाशित किया जा रहा है, यह सम्पादन अधिकारी विद्वान कर रहे हैं।

सभा ने अपनी स्थापना के साथ ही नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के संरक्षण तथा प्रसार के लिए 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' के नाम से अपनी पत्रिका प्रकाशित की थी। आगे चल कर यह पत्रिका त्रैमासिक हो गई। इसमें शोध तथा अनुशीलन के लेख प्रकाशित होते हैं, ये लेख हिन्दी-साहित्य के विविध अंगों के विवेचन, भारतीय इतिहास और संस्कृति के अनुसंधान एवं प्राचीन-अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला के पर्यालोचन को लेकर लिखे जाते हैं। आज यह पत्रिका हिन्दी-जगत् की सबसे प्राचीन पत्रिका है। इसमें प्रकाशित होनेवाली सामग्री ज्ञान और प्रमाण का उच्चस्तर रखती है।

सभा ने 'हिन्दी' और 'विधि पत्रिका' नाम के हिन्दी-मासिक तथा 'हिन्दी-रिव्यू' नाम का अंग्रेजी-मासिक भी प्रकाशित किये थे, पर आर्थिक अभाव से उनको बन्द कर देना पड़ा। इधर सन् १९६६ में उसने पुनः हिन्दी-साहित्य और देवनागरी लिपि के प्रचार-प्रसार से संबद्ध समाचार और सूचनाओं की परिचायिका एक नई 'नागरी पत्रिका' प्रकाशित की है।

सभा जिस समय स्थापित हुई, उस समय हिन्दी का किसी हिन्दी-विद्वान् द्वारा लिखा हुआ अपना व्याकरण नहीं था। इस अभाव के कारण हिन्दी के पठन-पाठन का उचित प्रचार-प्रसार नहीं हो पाता था। अब तक दो अंग्रेजों के ही हिन्दी-व्याकरण उपलब्ध थे, जो वस्तुतः ईसाई-धर्म-प्रचारकों के लिए लिखे गये थे। एक था १८२७ में लिखा गया पादरी एडम का व्याकरण और दूसरा था पादरी केल्लाग का व्याकरण- जो सन १८७५ में लिखा गया। केल्लाग

का व्याकरण बड़ा और सर्वाङ्ग था परन्तु अंग्रेजी में था। एडम का व्याकरण यद्यपि हिन्दी मे था लेकिन बहुत पुराना पड गया था, छोटा था तथा हिन्दी के अद्यतन रूप की व्याख्या नही करता था। सभा ने व्याकरण लिखवाने के लिए योजना-बद्ध कार्य किया और पं० कामताप्रसाद गुरु को यह काम सौंपा। उनका लिखा हुआ हिन्दी-व्याकरण ग्रन्थ सन् १६१६ मे प्रकाशित हुआ। उसका संक्षिप्त संस्करण भी पाठकों की सुविधा के लिए निकाला गया। व्याकरण का सम्बन्ध भाषा के विकास और भाषा-विज्ञान से होता है, वर्तनी आदि की समस्याएँ भी उसके भीतर आती है, इस दृष्टि से हिन्दी भाषा के सम्बन्ध मे जो अध्ययन और अनुशीलन पिछली दशाब्दियों मे होता रहा उससे हिन्दी व्याकरण के नये सिरे से परिवर्धन और संशोधन की आवश्यकता प्रतीत हुई। यह कार्य सभा ने इस विषय के अधिकारी विद्वान् प० किशोरीदास वाजपेयी से करवाया और सन् १६६० मे उनका लिखा हुआ 'हिन्दी-शब्दानुशासन' प्रकाशित किया।

सन् १६२८ मे सभा ने हिन्दी साहित्य के इतिहास और उसके अनुशीलन के क्षेत्र मे सर्वाधिक प्रामाणिक एव सर्वा ग ग्रथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का लिखा हुआ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' प्रकाशित किया, जो अब भी उतना ही प्रामाणिक और अपने काल-निरूपण मे मौलिक है।

हिन्दी मे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो के प्रकाशन के लिए सभा ने देश के हिन्दी-प्रेमी श्रीमानो से सहायता प्राप्त की है, स्वयं भी इस दिशा में अपने साधनो का उपयोग किया है। अतः सभा के महत्त्वपूर्ण सभी प्रकाशन विभिन्न व्यक्तियो की स्मृति रूप पुस्तकमालाओ मे प्रकाशित हुए है। अब तक सभा ने लगभग ६०० ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। इन ग्रन्थों से हिन्दी साहित्य के विभिन्न अगो की पूर्ति हुई है।

सन् १६५३ मे सभा ने अपनी हीरक जयन्ती मनाई। इस जयन्ती-समारोह का सभापतित्व भारत गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने किया था। सभा ने अपनी इस जयन्ती के साथ हिन्दी की समृद्धि के लिए नये कार्यों को पूरा करने का सकल्प किया हिन्दी शब्द सागर का

संशोधन और परिवर्धन भी इन्ही संकल्पो मे था। अन्य शुभ-सकल्प थे—अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रथो का प्रकाशन, हिन्दी साहित्य के वृहत् इतिहास का १७ भागो मे प्रणयन, हिन्दी-विश्वकोश का प्रणयन और प्रकाशन। प्रसन्नता की बात है कि सभा के सचालक गण बड़े श्रम और लगन से इन कार्यो को पूरा कर रहे है, सरकार का आर्थिक सहयोग भी सभा को प्राप्त है। अब तक इस संकल्प के बाद एक दर्जन से अधिक हस्तलिखित ग्रन्थों का सम्पादन और प्रकाशन हो चुका है। हिन्दी साहित्य के वृहत् इतिहास के चार भाग—प्रथम, द्वितीय, षष्ठ और षोडश प्रकाशित हो चुके है, शेष भागो का लेखन और सम्पादन हो रहा है। हिन्दी विश्व कोश (इन साइक्लोपीडिया) १० भागो मे प्रकाशित होगा, अब तक इसके छह भाग छप चुके है।

'हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली' नाम से अंग्रेजी-हिन्दी का शब्द-सग्रह भी सभा ने सन् १९०१-१२ मे प्रकाशित किया है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है। इसके सम्पादन और प्रणयन मे पूर्ण विचार-विमर्श के साथ छानवीन कर सामग्री एकत्र की गई थी। इसमे ज्योतिष, रसायन, भौतिकविज्ञान, गणित, वेदान्त, भूगोल, अर्थशास्त्र, पुरातत्त्व आदि विषयो के शब्द सगृहीत हुए है।

उत्तर प्रदेश सरकार के सहयोग से सभा ने 'राजकीय शब्दकोश' का कार्य भी आरम्भ किया था। बाद मे सहायता न मिलने पर अर्थाभाव से उसे बन्द कर देना पड़ा।

सभा का एक अन्य महत्त्वपूर्ण काम उसका 'आर्य भाषा-पुस्तकालय' है। पहले सभा के पुस्तकालय का नाम 'नागरी भंडार' था। १८९४ ई० मे श्रीगदाधर सिंह के अपने आर्यभाषा पुस्तकालय को सभा के लिए दान करने पर 'नागरी भंडार' का नाम बदल कर 'आर्यभाषा-पुस्तकाल' कर दिया गया। इसम ५००० हस्तलिखित ग्रन्थ और ४०००० छपी पुस्तके संगृहीत हैं। पत्र-पत्रिकाओ का पुराना संग्रह भी पुस्तकालय में है। हिन्दी के शोधछात्र निरन्तर इस पुस्तकालय से लाभ उठाते है।

सन् १९५१ मे सभा ने हिन्दी-सकेत लिपि का निर्माण करवाया और उसमे परिष्कार करती रही सभा के उद्योग से प्रदेश की सर

कारो में हिन्दी-संकेत लिपि का व्यवहार होने लगा है। सभा का संकेत लिपि और टंकण का एक विद्यालय भी चलता है।

ज्वालापुर (हरिद्वार) मे श्री स्वामी सत्यदेव ने 'सत्यज्ञान निकेतन' नाम का अपना आश्रम बनवाया था, उसको उन्होंने पश्चिमोत्तर अंचल मे हिन्दी के प्रचार के लिए सभा को अर्पित कर दिया था। सभा ने वहाँ एक पुस्तकालय-भवन बनवा दिया है और स्वामी जी के उद्देश्यानुसार उसका सचालन करती है।

आयोजन

सभा प्रति वर्ष स्वर्गीय कवि जयशंकर प्रसाद की स्मृति मे एक साहित्य गोष्ठी और व्याख्यान माला का सचालन करती है।

सभा हिन्दी के लेखको का सम्मान करने के लिए और नूतन विषयो पर हिन्दी मे पुस्तको के प्रणयन की प्रेरणा देने के लिए लेखकों को पुरस्कार और पदक प्रदान करती है। इन पुरस्कारो और पदकों की हिन्दी जगत् मे बड़ी प्रतिष्ठा है। पुरस्कारो के नाम ये है, जो अपने-अपने विभिन्न विषयो के अनुसार प्रति चौथे वर्ष दिये जाते हैं—(१) राजा बलदेवदास बिड़ला-पुरस्कार—२००) (२) बटुकप्रसाद पुरस्कार—२००) (३) रत्नाकर पुरस्कार प्रथम—२००) (४) रत्नाकर पुरस्कार-द्वितीय—२००) (५) डा० छान्नूलाल पुरस्कार—२००) (६) जोधसिंह पुरस्कार—२००) (७) माधवी देवी महिला पुरस्कार—१००) (८) डा० श्याम सुन्दरदास पुरस्कार प्रथम—१०००), द्वितीय—२००) (९) मांडलिक पुरस्कार—२००)। पदकों का विवरण इस प्रकार है—(१) डा० हीरालाल स्वर्णपदक (प्रति तीसरे वर्ष) और (२) द्विवेदी स्वर्णपदक (प्रति दूसरे वर्ष) अपने विषय के अनुसार सर्वोत्तम रचनाओ पर स्वतंत्र रूप से लेखकों को दिये जाते है, शेष आठ पदक रजतपदक हैं और उक्त पुरस्कारो के साथ सम्बद्ध है—(३) सुधाकर पदक (४) ग्रीव्ज पदक (५) राधाकृष्णदास पदक (६) बलदेवदास पदक (७) गुलेरी पदक (८) रेडिचे पदक (९) वसुमति पदक (१०) भगवानदेवी बाजोरिया पदक।

संचालन-संगठन

सभा का एक भवन, निजी प्रेस—नागरी-मुद्रण और अथिति-भवन है। एक नये अन्य विशाल-भवन के निर्माण की योजना है।

सभा का संचालन एक प्रबन्ध-समिति करती है। इस प्रबन्ध-समिति में ११ कार्याधिकारी और अन्य सदस्य होते हैं। प्रबन्ध-समिति ही आवश्यकता पड़ने पर अन्य समितियों का निर्माण करती है। प्रबन्ध-समिति का चयन मतदान-प्रणाली से साधारण-सदस्यों द्वारा होता है। प्रबन्ध समिति में उत्तर-प्रदेश के अतिरिक्त भारत के अन्य प्रदेशों के प्रतिनिधि और विदेश के भी प्रतिनिधि होते हैं। देश के विभिन्न अंचलों में स्थित समानधर्मा संस्थाओं से सभा सम्बन्ध स्थापित रखती है। इस समय (१९६४ में) ऐसी ५८ संस्थाएँ सभा से सम्बद्ध हैं।

सभा का इतिहास अत्यन्त उज्ज्वल रहा है। इसको सदैव योग्य और लगनवाले संचालक एवं कार्यकर्ता प्राप्त होते रहे हैं। अतः हिन्दी की प्रशस्त सेवा सभा द्वारा सतत होती चल रही है। हिन्दीवालों के लिए यह गौरव की बात है कि ७३ वर्ष पुरानी उनकी सब से प्राचीन संस्था अब भी अपने नये रक्त से ही हिन्दी की सेवा में जुटी हुई है।

२—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

नागरी प्रचारिणी सभा काशी के अनन्तर हिन्दी के देश-व्यापी प्रचार-प्रसार का कार्य प्रयाग की हिन्दी साहित्य सम्मेलन—संस्था ने किया।

सन् १९०६ ई० में प्रयाग के 'अभ्युदय' पत्र में महामना पं० मदनमोहन मालवीय ने कई लेख इस आशय के लिखे कि पूरे देश में हिन्दी भाषा और उसकी नागरी लिपि के प्रचार के लिए एक योजनाबद्ध कार्य का आरम्भ किया जाना चाहिए, जिससे हम भविष्य में देश की एक सर्व सम्मत राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा कर सकें। तब १० अक्टूबर १९१० को महामना मालवीय की ही उसप्रेरणा से नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने भारतीय साहित्यकारों का एक

सम्मेलन काशी में इस उद्देश्य से बुलाया कि हिन्दी तथा नागरी लिपि के व्यापक प्रचार-प्रसार के सम्बन्ध मे उपयुक्त साधनो तथा प्रयत्नो पर विचार किया जाय। इसके उपयुक्त सभापति के लिए अखबारो मे पहले से चर्चा भी होती रही और मालवीय जी से ही इस सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए सर्वसम्मत निवेदन किया गया। तदनुसार सम्मेलन पं० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व मे ही सम्पन्न हुआ। सम्मेलन मे मालवीय जी ने हिन्दी-प्रचार के उक्त कार्य के लिए वही पैसा-सग्रह किये जाने का प्रस्ताव रखा। कोश-सग्रह के लिए हिन्दी-पैसा-फड समिति बनाई गई। कोश-संग्रह मे पैसा देना वही पर लोगो ने शुरू कर दिया। हिन्दी-पैसा-फंड में शीघ्र ही २२५५४६ पैसे जमा हो गये। उक्त अधिवेशन मे ही सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन प० गोविन्द-नारायण मिश्र की अध्यक्षता मे प्रयाग मे किये जाने का निश्चय हुआ। प्रयाग के अधिवेशन मे सम्मेलन की एक नियमावली प्रस्तुत हुई, वह स्वीकार भी कर ली गई, और नियमावली के अनुसार सम्मेलन का कार्य नियमित रूप से चलने लगा। मालवीय जी के सुझाव के अनुसार, क्योंकि काशी मे नागरी-प्रचारिणी सभा हिन्दी का कार्य कर ही रही थी, सम्मेलन का कार्यालय प्रयाग में रखा गया। इस प्रकार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की नीव पडी। और चन्द ही वर्षो मे इसने अखिल भारतीय संस्था का रूप ले लिया।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग भारत की एक ऐसी संस्था है जो अपनी व्यापकता और लोकप्रियता मे कभी राष्ट्रीय कांग्रेस के बाद दूसरा स्थान रखती थी। इसके वार्षिक अधिवेशन भारत के विभिन्न स्थानों मे हुए है और देश के गण्यमान्य नेताओ, सामाजिक कार्य-कर्ताओ तथा साहित्य-मनीषियो ने अधिवेशनो की अध्यक्षता की है।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित करने के लिए सम्मेलन के संचालक सदैव अत्यन्त सक्रिय रहे हैं। इस कार्य में सम्मेलन का योगदान सब से अधिक है। महामना मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा गांधी, पं० रामावतार शर्मा, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, डा० भगवानदास, पं० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा अयोध्या सिंह

'हरिऔध', श्रीगणेश शंकर 'विद्यार्थी', महाराज सर सयाजीराव गायकवाड (बड़ौदा), डा० राजेन्द्र प्रसाद, सेठ जमनालाल बजाज, प० बाबूराव विष्णु पराडकर, डा० अमरनाथ झा, प० माखनलाल चतुर्वेदी, श्री सम्पूर्णानन्द, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, महापण्डित राहुल साकृत्यायन, श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार जैसे विभिन्न क्षेत्रो के सम्मान्य व्यक्तियो ने सम्मेलन के अध्यक्षपद पर काम किया है।

हिन्दी-प्रचार-कार्य का एक सुव्यवस्थित सिलसिला जो सम्पूर्ण भारत मे व्यापक होता गया उसका मूल श्रेय हिन्दी साहित्य सम्मेलन को ही है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा को सम्मेलन ने ही जन्म दिया। आज राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के प्रचार-कार्य का क्षेत्र सभी अहिन्दी भाषी प्रदेशो मे व्यापक हो गया है। और मद्रास की हिन्दी प्रचार सभा ने दक्षिण भारत मे न केवल हिन्दी को लोकप्रिय बनाया है, अहिन्दी-भाषा-भाषियो मे हिन्दी के विद्वान् एवं लेखक पैदा किये है।

एक समय था, जब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओ मे सम्मिलित होने के लिए, सम्मेलन के कार्यों मे सहयोग देने के लिए जनता मे अपार श्रद्धा और प्रेम था। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हिन्दी के इतिहास का एक भाग है, हिन्दी की लोकप्रियता और प्रचार कार्य का स्वर्ण-युग है।

परीक्षा-संचालन

सम्मेलन का चतुर्थ अधिवेशन सन् १९१३ मे भागलपुर में हुआ। इसके अध्यक्ष स्वामी श्रद्धानन्द थे। इसमे सम्मेलन ने हिन्दी की परीक्षाएँ आरम्भ किये जाने का प्रस्ताव स्वीकार किया और उसकी नियमावली तैयार की गई। अगले वर्ष सम्मेलन ने तीन परीक्षाएँ शुरू की—प्रथमा, मध्यमा (विशारद), उत्तमा (साहित्यरत्न)। अन्तिम दो परीक्षाएँ उपाधि परीक्षा थी। हिन्दी-प्रेम से आकृष्ट होकर उत्साही युवक इन परीक्षाओ मे सम्मिलित होने लगे, उत्तर प्रदेश मे तब कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता श्री कृष्णदत्त पालीवाल सम्मेलन के प्रथम साहित्य रत्न हैं परीक्षाओ की लोकप्रियता बढ़ती रही सम्मेलन

ने इन परीक्षाओ को हिन्दी-विश्वविद्यालय का रूप दिया और इनके संचालन के लिए अलग से परीक्षा-समिति बनाई गई। परीक्षाओ का भी विस्तार हुआ, सम्प्रति सम्मेलन निम्नलिखित परीक्षाएँ लेता है—

प्रथमा, उपवैद्य, मध्यमा (विशारद), आयुर्वेद विशारद, उत्तमा (साहित्य-रत्न, विज्ञानरत्न, आयुर्वेद रत्न), कृषि विशारद, व्यापार विशारद, शिक्षा विशारद, सम्पादनकला विशारद, शीघ्र लिपि विशारद, मुनीमी अर्जीनवीसी।

इन परीक्षाओ को केन्द्रीय सरकार तथा प्रदेशीय सरकारो ने विभिन्न मान्यताएँ दी हैं। उन मान्यताओ के अनुसार इन परीक्षाओ मे उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को राजकीय सेवाओ तथा शिक्षा-संस्थाओ मे कार्य करने की सुविधा प्राप्त होती है प्रति वर्ष तीस हजार से अधिक परीक्षार्थी इन परीक्षाओ मे सम्मिलित होते है, उन परीक्षार्थियो मे हिन्दी भाषी प्रदेशों के अतिरिक्त अहिन्दी भाषी प्रदेशो के—सुदूर द्रविड़ भाषी प्रदेशो के भी परीक्षार्थी होते है, जो बडी श्रद्धा से सम्मेलन की परीक्षाओ मे सम्मिलित होते है और दीक्षान्त-समारोह के अवसर पर उतनी दूर से प्रयाग में अपना प्रमाणपत्र लेने आते है।

परीक्षा मे सम्मिलित परीक्षार्थियो का तीन वर्षों का लेखा यह है—

वर्ष	प्रथमा	मध्यमा	उत्तमा प्र० खं०	उत्तमा द्वि० ख०	अन्य विशारदादि	सम्पूर्ण संख्या
संवत् २०१७ (१९५९)	७५०७	१३६४२	५२६५	२७१५	२९२६	३२०५५
संवत् २०१८ (१९६०)	७९२७	१४६८६	५३३१	२९०३	३३१९	३४१६६
संवत् २०१९ (१९६१)	७७५६	१४७४०	५९८५	३२३४	४२९०	३६००५

संवत् २००८ (सन् १९५०) में परीक्षार्थियो की कुल सख्या ४६२५४ थी।

सच पूछा जाय तो इन परीक्षाओ ने ही हिन्दी के प्रचार मे बिजली का-सा काम किया है। परीक्षाओं के संचालन का, चतुर्थ सम्मेलन का निर्णय बहुत

ही यशस्वी प्रमाणित हुआ। इन परीक्षाओ ने हिन्दी-प्रचार और सम्मेलन के कार्य-कलाप दोनो को व्यापकता प्रदान की। आज सम्मेलन के कार्यालय का आधा हिस्सा परीक्षा-विभाग ही है।

इन परीक्षाओ के साथ सम्मेलन उत्तमा परीक्षा-उत्तीर्ण अपने हिन्दी स्नातको को उनके किसी विषय के मौलिक शोध-प्रबन्ध पर साहित्यमहोपाध्याय की उपाधि प्रदान करता है। यह उपाधि पीएच्० डी० के समकक्ष है और इसके शोध-प्रबन्ध का परीक्षण भी उसी क्रम से होता है। अब तक (१९६५ ई० तक) १५ शोधस्नातको के शोधप्रबन्ध इस उपाधि के लिए स्वीकार किये जा चुके है और उनको उपाधि प्रदान की गई है।

दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार की योजना

सन् १९१६ मे लखनऊ राष्ट्रीय काग्रेस का अधिवेशन हुआ था, उसमे पहली बार महात्मा गाँधी सम्मिलित हुए थे। अब तक काग्रेस अधिवेशन की समस्त कारंवाई और भाषण अंग्रेजी मे हुआ करते थे, गाँधी जी ने बहुत विरोध करने पर भी अपना भाषण हिन्दी मे किया। इसका हिन्दी-प्रचार मे बडा अच्छा प्रभाव पडा। सम्मेलन के संचालको ने इससे प्रभावित होकर सन् १९१७ में इन्दौर मे होनेवाले सम्मेलन के अधिवेशन का सभापति महात्मा गाँधी को निर्वाचित किया। इन्दौर का अधिवेशन प्रचार-कार्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा। गाँधी जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे दक्षिण भारत के तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड भाषी प्रदेशों में हिन्दी-प्रचार की आवश्यकता बताई और इस कार्य के लिए पैसा इकट्ठा करने की अपील की। गाँधी जी की माँग पर इन्दौर-नरेश महाराज यशवन्त राव होल्कर और नगरसेठ हुकुमचन्द जी ने दस-दस हजार रुपये हिन्दी-प्रचार-कार्य की सहायता मे दिये। इस धन का उपयोग दक्षिण भारत मे हिन्दी-प्रचार करने में किया गया। इस अधिवेशन मे यह भी प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि दक्षिण भारत के छह युवक हिन्दी सीखने के लिए प्रयाग भेजे जायें और उत्तर भारत के

छह युवक दक्षिण की भाषाओं को सीखने तथा हिन्दी का प्रचार करने के लिए दक्षिण भारत भेजे जायें।

सन् १९१८ मे मद्रास के 'भारत सेवा संघ' (इंडियन सर्विस लीग) के हिन्दी-प्रेमी युवको ने गाँधी जी को लिखा कि हम हिन्दी सीखना चाहते है, हमारे लिए एक हिन्दी-प्रचारक भेजा जाय। गाँधी जी ने अपने पुत्र श्री देवदास गाँधी को, उस समय उनकी अवस्था १८ वर्ष थी, शीघ्र ही हिन्दी-प्रचार के लिए मद्रास भेजा। श्री देवदास गाँधी ने अपने कार्य मे सहयोग देने के लिए एक और व्यक्ति की माँग की, तब उनके सहायतार्थ सम्मेलन ने स्वामी सत्यदेव परिव्राजक को भेजा। श्री देवदास गाँधी ने मद्रास मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का एक कार्यालय खोल दिया और इस प्रकार वे हिन्दी-प्रचार का कार्य करते रहे। बाद मे श्री हृषीकेश शर्मा और श्री हरिहर शर्मा भी दक्षिण भारत मे हिन्दी के प्रचार-कार्य के लिए गये। श्री हृषीकेश शर्मा ने आन्ध्र प्रदेश मे और श्री हरिहर शर्मा ने मद्रास मे उक्त कार्य को किया। एक वर्ष पश्चात् जब श्री देवदास गाँधी गुजरात लौटे तब मद्रास-स्थित हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के कार्यालय का भार उन्होने श्री हरिहर शर्मा को सौंप दिया।

सन् १९२७ तक मद्रास-स्थित हिन्दी साहित्य सम्मेलन—प्रचार कार्यालय के नाम से ही हिन्दी के प्रचार-प्रसार का काम किया जाता रहा, पुनः महात्मा गाँधी की सलाह से इस प्रचार-कार्यालय का नाम दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार-सभा, मद्रास कर दिया गया। अतः १९२७ से सम्मेलन का उक्त कार्यालय स्वतंत्र रूप से एक नई संस्था बन गया।

सम्मेलन ने मद्रास की भाँति हिन्दी-प्रचार के लिए एक दूसरा केन्द्र वर्धा मे प्रवर्तित किया। सन् १९३६ मे हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का २५वाँ अधिवेशन नागपुर मे देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद जी की अध्यक्षता मे हुआ। उसी अधिवेशन मे गाँधी जी की सलाह से हिन्दी-प्रचार-समिति वर्धा का संगठन किया गया, जिसका उद्देश्य उन चार अहिन्दी भाषी प्रदेशो को छोड कर जिनमे हिन्दी का प्रचार दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास कर रही थी, शेष अहिन्दी

भाषी प्रदेशों मे हिन्दी का प्रचार-प्रसार करना निश्चित हुआ। १६३८ में इसका नाम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा कर दिया गया, उसकी शाखाएँ भारत के पूर्वी-पश्चिमी सभी अहिन्दी भाषी प्रदेशो मे हैं और यह संस्था अब भी हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का ही अंग है।

हिन्दी की उच्च शिक्षा की व्यवस्था

सम्मेलन ने अपने एक प्रस्ताव के अनुसार सन् १६१८में हिन्दी विद्यापीठ, प्रयाग का संचालन किया था, इस विद्यापीठ मे अहिन्दी भाषी प्रदेशो के युवक आकर सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा परीक्षाओं के पाठ्यक्रम का अध्ययन करते थे। इस विद्यापीठ से निष्णात होकर निकले युवक दक्षिण भारत मे हिन्दी के लिए अच्छा कार्य कर रहे है। यह विद्यापीठ यमुना के दक्षिण भाग मे महेवा गॉव मे स्थित है और नगर के वातावरण से अलग है, इसके साथ ५२ एकड भूमि सम्बद्ध है। सम्मेलन के कार्य-कलाप मे जो अव्यवस्था इधर के वर्षो मे आ गई थी, उसके कारण यह विद्यापीठ प्राय: वन्द रहा। प्रसन्नता की बात है कि अब उसे और भी व्यापक रूप से आरंभ करने का विचार सम्मेलन कर रहा है। वैसे सम्मेलन प्रति वर्ष अगस्त से दिसम्बर तक एक साहित्य-विद्यालय चलाता है, जिसमे सम्मेलन की परीक्षाओ का पाठ्यक्रम पढाया जाता है। विद्यालय की व्यवस्था नगर मे होती है।

हिन्दी संग्रहालय

सन् १६२२ मे सम्मेलन का १३वां अधिवेशन कानपुर मे हुआ, इस अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा सम्मेलन ने हिन्दी का एक वृहत् संग्रहालय स्थापित करने का निश्चय किया, तदनुसार हिन्दी-संग्रहालय का आरम्भ हुआ। आज यह संग्रहालय पर्याप्त विस्तार पा चुका है। इसका एक पाण्डुलिपि कक्ष है, उसमें प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो का संग्रह है। उसी के साथ हिन्दी-लेखकों की स्मृति-स्वरूप वस्तुएं भी सुरक्षित है। एक राजर्षि टंडन जी का कक्ष है, राजर्षि टंडन के जीवन मे प्राप्त राष्ट्रीय महत्त्व की वस्तुओ का संग्रह इस कक्ष

मे किया गया है। स्वर्गीय मेजर वामनदास वसु द्वारा प्रदत्त इतिहास की ४७८६ पुस्तके संग्रहालय में अलग से रखी गयी है, ये अंग्रेजी और बंगला भाषा मे हैं। सम्मेलन हिन्दी मे प्रकाशित सभी मौलिक पुस्तकों को क्रय कर संग्रहालय मे रखता है, हिन्दी मे प्रकाशित महत्त्व के समाचार पत्र और पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से संग्रहालय मे आती है और उनकी फाइल रखी जाती है। इस समय (१९६६ मे) संग्रहालय मे ४२८९० मुद्रित पुस्तके और लगभग ८००० हस्तलिखित पोथियाँ है। संग्रहालय का अलग से विशाल भवन है। संग्रहालय के साथ एक पुस्तकालय भी सम्बद्ध है जहाँ से उसके सदस्यों को पढने के लिए पुस्तके बाहर निर्गत की जाती है। पुस्तकालय में लगभग दस हजार पुस्तके है, संख्या मे प्रति वर्ष वृद्धि होती रहती है।

हिन्दी और हिन्दुस्तानी के मतभेद पर सम्मेलन के निर्णय (१९३८–१९४९)

सन् १९३५ में सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन के महात्मा गाँधी पुनः अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। तब तक हिन्दी के प्रचार-प्रसार में पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी। सन् १९३६ के नागपुर अधिवेशन मे उन्ही की प्रेरणा से हिन्दी प्रचार समिति की स्थापना वर्धा मे की गयी। परन्तु कांग्रेस की राजनीतिक विचारधारा हिन्दू-मुसलिम एकता के प्रति अधिक जागरूक हो रही थी और उसका यह भी विचार था कि हिन्दी के स्थान पर राष्ट्रभाषा को हिन्दी-उर्दू-मिश्रित शैली का 'हिन्दुस्तानी' रूप देने से उक्त एकता में एक और कड़ी जुड़ सकती है। गाँधी जी का ध्यान इस ओर अधिक था, फलतः उन्होंने हिन्दुस्तानी का समर्थन किया। सम्मेलन हिन्दुस्तानी का समर्थक नही था। अध्यक्ष होने के नाते वे सम्मेलन की स्थायी समिति के सदस्य थे। हिन्दी-हिन्दुस्तानी के प्रश्न को लेकर गाँधी जी का हिन्दी साहित्य सम्मेलन से भी मतभेद हो गया और उन्होने सन् १९४४ में सम्मेलन की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। सन् १९४२ मे ही उन्होंने हिन्दुस्तानी-प्रचार-समिति की स्थापना करवा दी थी।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के स्वरूप को लेकर सम्मेलन ने अपने अधिवेशनों में समय-समय पर जो निर्णय किये हैं, वे उक्त प्रश्न के ऐतिहासिक अनुशीलन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। नीचे शिमला (१९३८), पूना (१९४०), अबोहर (१९४१) और उदयपुर (१९४५) के निर्णयों का प्रमुख अंश दिया जा रहा है, इन अंशों को पढ़ कर हम अनुमान कर सकते हैं कि किस प्रकार सम्मेलन का दृष्टिकोण पहले उदारवादी था, वह हिन्दी को फारसी लिपि में लिखे जाने का तथ्य भी स्वीकार कर रहा था परन्तु राजनीतिक विवादों में उसका उदारवादी दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया और उसने इस आशंका में, कि कहीं उर्दू तथा हिन्दुस्तानी के पीछे हमारे उदार दृष्टिकोण का लाभ उठा कर उर्दू भाषा और फारसी लिपि ही राष्ट्रभाषा के पद को आत्मसात् न करने लगे, अपना खरा निर्णय किया एवं राष्ट्रभाषा के स्वरूप पर एक निश्चित नीति निर्धारित की—

"इस सम्मेलन के विचार में हिन्दी के आधुनिक साहित्य-निर्माण के लिए ऐसी भाषा उपयुक्त है जिसका परम्परागत सम्बन्ध संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं से है जिसकी शक्ति कबीर, तुलसी, सूर, मलिक मुहम्मद जायसी, रहीम, रसखान और हरिश्चन्द्र की कृतियों से आई है, जिसका मूलाधार देशी और तद्भव शब्दों का भंडार है और जिसके पारिभाषिक शब्द प्राकृत अथवा संस्कृत के क्रम पर ढाले गये हैं; किन्तु जिसमें रूढ़, सुलभ और प्रचलित देशी शब्दों का भी स्थान है।" (शिमला-अधिवेशन, १९३८)

"इस सम्मेलन को मालूम हुआ है कि राष्ट्रभाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में कुछ गलत-फहमी फैली हुई है, और लोग इसके लिए अलग-अलग राय रखते हैं। इसलिए यह सम्मेलन घोषित करता है कि राष्ट्रभाषा की दृष्टि से हिन्दी का वह स्वरूप मान्य समझा जाय, जो हिन्दू, मुसलमान आदि सब धर्मों के ग्रामीण और नागरिक व्यवहार करते हैं, जिसमें रूढ़ सर्वसुलभ अरबी, फारसी या अंग्रेजी शब्दों या मुहाविरों का बहिष्कार नहीं होता और जो साधारण रीति से राष्ट्रलिपि नागरी में तथा फारसी लिपि में लिखा जाता है।" (पूना-अधिवेशन, १९४०)

"प्रारम्भ से ही सम्मेलन ने अपनी भाषा, और राष्ट्रभाषा को हिन्दी कहा है और भाषा तथा नागरी लिपि की उन्नति और प्रचार ही उसका उद्देश्य रहा है। द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन मे जो पहिली नियमावली प्रयाग मे स्वीकृत हुई उसमे तथा उसके पश्चात् अब तक जितने भी संशोधन उस नियमावली मे हुए है उन सबमे यह प्रकट है कि सम्मेलन की भाषा का नाम हिन्दी है—यद्यपि साहित्यिक अथवा प्रचार की दृष्टि से, और स्थानो की विभिन्नता के कारण, उसके रूप मे शब्दावली का कुछ अन्तर होना स्वाभाविक है।

×　　　　×　　　　×

"उर्दू की साहित्यिक शैली, जो थोडे मे आदमियो मे सीमित है, हिन्दी मे इस समय इतनी विभिन्न हो गई है कि इसकी पृथक् स्थिति सम्मेलन स्वीकार करता है और हिन्दी की शैली से भिन्न मानता है।

"हिन्दुस्थानी या हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग मुख्यकर इसलिए हुआ करता है कि वह देशी शब्द-व्यवहार से प्रभावित हिन्दी शैली तथा अरबी-फारसी शब्द-व्यवहार से प्रभावित उर्दू शैली दोनो का एक शब्द से एक समय मे निर्देश करे।

×　　　　×　　　　×

"इस प्रकार निश्चित अर्थों में उर्दू और हिन्दुस्तानी शब्दो का प्रचलन है। इस विषय मे सम्मेलन का कोई विरोध नही है, किन्तु सम्मेलन साहित्यिक और राष्ट्रीय दोनो दृष्टियो से अपने और अपनी समितियो के काम में हिन्दी शैली का और उसके लिए हिन्दी शब्द का ही व्यवहार और प्रचार करता है।"

(अबोहर-अधिवेशन, १९४१)

"महात्मा गाँधी के इस मत से कि प्रत्येक देशवासी नागरी और फारसी दोनो लिपियाँ सीखे, सम्मेलन सहमत नहीं हो सकता। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सम्मेलन इस मत को नितान्त अव्यावहारिक तथा अग्राह्य समझता है। केवल नागरी लिपि में राष्ट्र लिपि होने की योग्यता है　इसमे

है, देश की बहुत बड़ी जन-संख्या ऐसी लिपियों का व्यवहार करती है जो नागरी लिपि के बहुत समीप है और उसके लिए नागरी सीखना अति सुगम है। यह मानी हुई बात है कि फारसी लिपि का आधार वैज्ञानिक नहीं है, सीखने में वह कष्ट-साध्य है। हमारे देश में साक्षरता की कमी है। अपनी प्रान्तीय लिपि के साथ दो अन्य लिपियाँ सीखना साधारण जनता के लिए संभव नहीं।

"सम्मेलन की दृष्टि पूर्ण रूप से राष्ट्रीय है। देश की राष्ट्रीय आवश्यकताओं के साथ सम्मेलन चलता आया है और चलना चाहता है और भाषा और लिपि के प्रश्न पर साम्प्रदायिक दृष्टि से विचार करना अनुचित समझता है।"

(उदयपुर-अधिवेशन, १९४५)

हिन्दी-हिंदुस्तानी का यह विवाद हमारे राष्ट्रीय नेताओं के लिए सन् १९३७ से ही विशेष आकृष्ट कर रहा था जब पहली बार प्रान्तों में कांग्रेस की सरकार बनी थी। विवाद राष्ट्रभाषा के स्वरूप का कम, राजनीतिक पहलुओं का ही अधिक था, राजर्षि टंडन जी ने इस विवाद में हिन्दी के सही स्वरूप के प्रति दृढ़ रुख अपनाया था। सन् १९४४ के सम्मेलन के जयपुर अधिवेशन में इस विवाद की पूरी चर्चा हुई। इस अधिवेशन के एक निश्चय के अनुसार ही रेडियो की भाषा-नीति में हिन्दी के हिन्दुस्तानी स्वरूप के कारण साहित्यकारों ने रेडियो का बहिष्कार किया, इस बहिष्कार का अच्छा प्रभाव पड़ा। सन् १९४७ में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद इस विवाद को और भी उभर कर सामने आना पड़ा। और जब भारतीय संविधान में राजभाषा हिन्दी के पक्ष में कांग्रेस पार्टी का भी बहुमत रहा तब हिन्दी का स्वरूप क्या हो, इसका निर्णय करना आवश्यक हो गया।

राष्ट्रभाषा के पक्ष में हिन्दी का निर्णय लिए जाने का महत्वपूर्ण कार्य सम्मेलन के मेरठ अधिवेशन (सन् १९४८) के बाद सन् १९४९ में दिल्ली में आयोजित राष्ट्रभाषा-व्यवस्था-परिषद् में हुआ, यह आयोजन हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा और दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सम्मिलित प्रयास से किया गया था। राष्ट्रभाषा के

सम्बन्ध मे निर्णय लेने के लिए यह परिषद् अहिन्दी-भाषी विद्वानो और राष्ट्रीय सेवा के प्रमुख स्तम्भो की थी । परिषद् ६-७ अगस्त १९४९ को श्री एन्० एन्० गोडबोले की अध्यक्षता मे हुई और इसमे हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष में निर्णय हुआ, यह बड़ी ही सुखद घटना थी, क्योकि निर्णय करनेवाले अहिन्दी भाषा-भाषी थे । आयोजन का सर्वाधिक श्रेय हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग को था । सम्मेलन ने उस समय अपनी 'सम्मेलन पत्रिका' का 'राष्ट्रभाषा विशेषाक' प्रकाशित किया था ।

राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध मे हिन्दी के पक्ष मे निर्णय हो जाने के बाद कांग्रेस पार्टी मे हिन्दी के स्वरूप को लेकर हिन्दी-विरोधी पक्ष ने विवाद खड़ा किया । यह विवाद हिन्दी और हिन्दुस्तानी का था । इस विवाद का निपटारा १२-१४ सितम्बर १९४९ की संविधान-परिषद् की ऐतिहासिक बैठक मे हुआ । जिसमे अन्ततः बहुमत ने हिन्दी का समर्थन किया । माननीय जवाहरलाल जी नेहरू हिन्दुस्तानी के समर्थन के लिए पूर्ण प्रयत्न शील रहे पर वैसा सम्भव न हुआ । हाँ, एक निर्णय हिन्दी के विपरीत हुआ, नागरी अको के स्थान पर रोमन अंको के प्रयोग की ही बात स्वीकार की गई, साथ ही पन्द्रह वर्ष तक अग्रेजी मे ही कार्य करने का निर्णय लिया गया, तब तक हिन्दी को इस योग्य बनाने की बात रक्खी गई, जिससे उसमे प्रशासन के सारे कार्य किये जा सके ।

सविधान-परिषद् के उक्त निर्णय के विरोध मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने अपनी स्थायी समिति की २८-२९ सितम्बर १९४९ की बैठक मे एक प्रस्ताव पारित किया, और उसकी प्रति सविधान-परिषद् को भेजी । उस प्रस्ताव का प्रमुख अश नीचे है—

"(क)............यह समिति सम्पूर्ण निर्णय को देखते हुए उससे अपना असन्तोष प्रकट करती है और संविधान-परिषद् को यह सूचना देना चाहती है कि देवनागरी लिपि का अग्रेजी अको द्वारा विरूपण देश की जनता को कदापि स्वीकार न होगा । सविधान परिषद् से समिति का निवेदन है कि सविधान की अन्तिम स्वीकृत से पहले वह अक सम्बन्धी अपने

निर्णय को परिवर्तित करे। अंग्रेजी भाषा के चलने का समय भी अधिक सीमित करे।

"(ख) सब से अधिक अनर्गल और अनधिकृत निर्णय संविधान-परिषद् का यह हुआ है कि देवनगारी लिपि मे प्राचीन देवनागरी अंकों के स्थान पर अंग्रेजी अंको का उपयोग किया जाय, जिसको उसने भारतीय अंको का अन्तर्राष्ट्रीय रूप देकर अपने निर्णय के दोष को छिपाने का प्रयत्न किया है।"

सचमुच सम्मेलन इतना शक्त सगठन था कि वह सविधान-परिषद् को, आज नहीं तो कल उसके निर्णय को बदलने के लिए बाध्य करता, किन्तु स्वय उसका अपना गठन गतिरोध की जिस भूमिका में पहुंच रहा था, उसके कारण सविधान-परिषद् का वह निर्णय आज (१९६६ मे) भी ज्यो का त्यो बना है। सम्मेलन मे उसके सन् १९५० के चुनाव के बाद ही गतिरोध के काले बादल छा गये, आगे उसका विवरण दिया जा रहा है।

वार्षिक अधिवेशन

सम्मेलन का संगठन और संचालन आरंभ से ही जनतान्त्रिक प्रणाली पर होता रहा है। विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधियों द्वारा स्थायी समिति संगठित की जाती थी, स्थायी समिति के सदस्यो की संख्या प्रायः दो सौ के लगभग रहा करती थी। पुनः स्थायी समिति कार्य समिति एवं अन्य समितियो का निर्माण करती थी। प्रत्येक वर्ष यह निर्वाचन हुआ करता था, अध्यक्ष एवं अन्य पदाधिकारियो—प्रधान मंत्री, प्रबन्ध मंत्री, परीक्षा मंत्री, प्रचार मत्री, साहित्य मत्री, अर्थ मंत्री, सग्रह मंत्री और राष्ट्रभाषा प्रचार मत्री—का निर्वाचन भी प्रत्येक वर्ष होता था। नया अध्यक्ष ही प्रतिवर्ष वार्षिक अधिवेशन को सचालित करता था और पूरे वर्ष भर सम्मेलन के उत्थान तथा हिन्दी के अभ्युदय, प्रचार-प्रसार के लिए प्रत्येक समुचित प्रयास एव कार्य-सचालन करता था।

वार्षिक अधिवेशन के समय अन्य विषयो की परिषदें भी आयोजित की जाती थी जैसे—साहित्य परिषद् राष्ट्रभाषा परिषद्, दर्शन परिषद् समाज

शास्त्र परिषद्, विज्ञान परिषद् । इन परिषदों की अध्यक्षता उनके विषय के विख्यात अधिकारी विद्वान् किया करते थे ।

सम्मेलन के अधिवेशनों मे बड़े उल्लास के साथ देश के विभिन्न भागों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे । और अधिवेशन मे हिन्दी के उत्थान के लिए किये गये निर्णयों का सभी हृदय से स्वागत करते थे । इस वातावरण का हिन्दी के प्रचार-प्रसार पर बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ता था । सम्मेलन का अन्तिम अधिवेशन दिसम्बर सन १९५० में कोटा मे हुआ, उसके अध्यक्ष प्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० जयचन्द्र विद्यालंकार थे ।

सम्मेलन में गतिरोध

सन् १९५० के बाद सम्मेलन के संगठन और संचालन मे नियमावली के प्रश्न को लेकर गतिरोध पैदा हो गया । यह गतिरोध सम्मेलन और हिन्दी के लिए बड़ा घातक सिद्ध हुआ । नियमावली के प्रश्न ने न्यायालय मे विवाद का रूप ले लिया । कटुता इतनी बढ़ गई कि न्यायालय की ओर से एक आदाता सम्मेलन की देख-रेख के लिए नियुक्त हुआ । आजादी के बाद ठीक उस समय जब कि सरकार द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में व्यवहृत कराने-हेतु अथक प्रयासो की आवश्यकता थी, सम्मेलन की यह पंगुता हिन्दी के लिए अन्धकार का युग था । कहा यही जाना चाहिए कि हिन्दी-प्रेमी और सम्मेलन के कर्णधार ही इसके लिए दोषी थे ।

सम्मेलन के इस गतिरोध की पूर्व भूमिका इसके बम्बई-अधिवेशन (१९४७ ई०) मे आरम्भ होती है । सम्मेलन का यह दुर्भाग्य था कि गतिरोध की उक्त भूमिका से उसके प्रमुख कर्णधार राजर्षि बाबू पुरुषोत्तम दास जी टंडन भी अपने को अलग न रख सके, बल्कि एक पार्टी बन गये । बम्बई अधिवेशन के अध्यक्ष महापंडित राहुल सांकृत्यायन और प्रधान मन्त्री के निर्वाचन मे ही सम्मेलन के सदस्यों मे खुल कर दो पक्ष हो गये । बात यह थी कि बम्बई अधिवेशन के पूर्व विगत दस वर्षों से सम्मेलन की रीति-नीति राजर्षि टंडन जी से ही प्रेरित होती थी १९४७ ई० मे मिलने के बाद

जनतंत्र की प्रकृति ने साहित्यकारों को सम्मेलन के संचालन में बहुमत-सम्मत रीति-नीति के लिए आगे किया। यद्यपि इस प्रकार के प्रश्न उस समय भी पैदा हुए थे जब अबोहर-अधिवेशन (सन् १९३९) में देशरत्न राजेन्द्रप्रसाद राजर्षि टंडन जी की इच्छा के विरुद्ध सम्मेलन के सभापति न निर्वाचित हो सके तथापि हिन्दी के हितों को देखते हुए वे प्रश्न उसी समय विलीन हो गये थे, १९४७ ई० के बाद जनतंत्र के नीतिगत विचारों ने सम्मेलन के संचालन में जो करवट ली, तो राजर्षि टंडन जी की नीतियों को सम्मेलन में यथावत् मौन स्वीकार कर लेने की परम्परा टूट गई। राजर्षि टंडन जी का पक्ष अल्पमत में होता गया और इस अल्पमत को उस समय बहुत अधिक निराशा हुई, जब कोटा-अधिवेशन (१९५० ई०) के अध्यक्ष श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार निर्वाचित हुए। उसके बाद ही सम्मेलन की नियमावली के प्रश्न को लेकर उत्पन्न विवाद न न्यायालय की शरण ली और सन् १९५१ में न्यायालय द्वारा सम्मेलन का संचालन एक आदाता को सौंपा गया।

सम्मेलन की नई नियमावली का प्रश्न भी ऐसा था, जो उसके अब तक के नियम और जनतांत्रिक संचालन को सर्वतः उलट देनेवाला था। इस नई नियमावली के समर्थक राजर्षि टंडन जी भी थे, उससे पुनः नये कार्यकर्ताओं को सम्मेलन की सेवा का अवसर बहुत कम रह जाता। जनतंत्र के युग में ऐसा सम्भव नहीं था। वह नियमावली बहुमत से स्वीकार न हो सकी, इसके सम्बन्ध में विचार करने के लिए सम्मेलन का एक विशेष अधिवेशन पटना में (३० जून १९५० में) बुलाया गया। पर उस अधिवेशन में कोई सही हल सामने न आ सका, जिससे इस विवाद का अन्त होता।

नियमावली का वही प्रश्न न्यायालय में उपस्थित हुआ। न्यायालय के निर्णयों के लिए समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, तब तक सम्मेलन निष्क्रिय हो रहा था जब कि उसे अत्यन्त क्रियाशील होने की आवश्यकता थी। आदाता से सम्मेलन की रक्षा तो हो रही थी, पर वह अकेला व्यक्ति इस अखिल भारतीय संस्था का संचालन क्या करता? सम्भवतः इस परिस्थिति का अनुभव राजर्षि टंडन और दूसरा पक्ष दोनों कर रहे थे. अतः समझौता-वार्ता

का प्रयत्न शुरू हुआ, पर वार्ता सफल न हुई। अन्ततः राजर्षि टंडन ने उत्तर प्रदेश की सरकार को अनेक हस्ताक्षरों से युक्त प्रार्थना पत्र देकर उससे सन् १९५८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लिए एक विधेयक पारित करवाया। दूसरे पक्ष ने उच्च न्यायालय में विधेयक के विरुद्ध अपील कर दी और सन् १९५९ में विधेयक उच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया। सम्मेलन की निष्क्रियता वैसी ही चलती रही, इधर राजर्षि टंडन जी का स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं था, वे सम्मेलन के लिए अत्यन्त चिन्तित रहने लगे। पुनः उन्होंने केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-विभाग को एक प्रार्थना पत्र भिजवाया, जिसमें लगभग ढाई सौ हिन्दी-प्रेमियों और सम्मेलन के पुराने हितैषियों के हस्ताक्षर थे, उसमें भारत सरकार से हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पुनर्गठन और सञ्चालन के हेतु विधेयक बनाने का विनीत आग्रह किया गया। इसके पूर्व (१९६१ में) उच्च न्यायालय प्रयाग ने सम्मेलन के नियमावली-सम्बन्धी विवाद पर अपना निर्णय दे दिया और पुरानी नियमावली को मान्यता दे दी थी। आदाता महोदय जब उस नियमावली के अनुसार न्यायालय के निदेश पर चुनाव कराने जा रहे थे तब भारत सरकार से विधेयक बनाने के लिए प्रार्थना की गई। फलतः मार्च १९६२ में पुरानी लोक सभा की अन्तिम बैठक ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन का विधेयक (अधिनियम सं० १३) पारित कर दिया गया। विधेयक के द्वारा पन्द्रह व्यक्तियों का एक प्रथम शासन निकाय बना, जो सम्मेलन की नई नियमावली बना कर और उसके अनुसार नया चुनाव करा कर समाप्त हो जायगा। सम्भवतः उस समय ऐसी आशा थी कि नई नियमावली छह महीने में बन जायगी और एक वर्ष के भीतर नया चुनाव हो जायगा। परन्तु (१९६६ में) चार वर्ष हो गये, अभी प्रथम शासन निकाय बना है, उसके दो अध्यक्ष और तीन सचिव बदल चुके। सम्मेलन नये चुनाव की आशा में निष्क्रिय बना बैठा है। राजर्षि टंडन जी जब रोग-शय्या पर थे तब प्रथम शासन निकाय की बैठक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भवन में हुई थी, उसकी कार्रवाई अंग्रेजी के माध्यम से हुई थी, कदाचित् राजर्षि टंडन जी के लिए यह उससे भी अधिक कष्टकर बात थी, जो दो दलों के संघर्ष के बीच सम्मेलन का

जनतांत्रिक संचालन हो रहा था। विधेयक में सम्मेलन के कार्यों मे रोमन अंको के व्यवहार की ही बात कही गई है, जो भारत सरकार की भाषा-नीति है। राजर्षि टंडन जी ने इसको हटाने के लिए उसी समय भारत सरकार को लिखा था। इसी बीच १ जुलाई सन् १९६२ को ही टंडन जी की मृत्यु हो गयी।

अन्य आयोजन

सम्मेलन हिन्दी की मौलिक उच्च कोटि की कृतियो पर पुरस्कार देकर हिन्दी के लेखकों को सम्मानित करता है। उन पुरस्कारो के नाम ये हैं—

१—मंगला प्रसाद पारितोषिक (प्रति वर्ष) १२००) रु० २—सेकसरिया महिला पुरस्कार ५००), ३—मुरारका पुरस्कार ५००) रु०, ४—राधामोहन गोकुल पुरस्कार २५०) रु०, और ५—रत्नकुमारी पुरस्कार २५०) रु०।

ये पुरस्कार अपने निर्दिष्ट विषय की पुस्तको पर नियुक्त की गई पुरस्कार-समिति के निर्णय के अनुसार दिये जाते हैं। हिन्दी-जगत् मे इन पुरस्कारो के प्रति बड़ा सम्मान-भाव है।

सम्मेलन उच्चकोटि के विद्वानो को अपनी कार्य समिति से प्रस्तावित निर्णय के अनुसार 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि देकर उनको सम्मानित करता रहा है। यह उपाधि ताम्रपत्र पर अंकित करा कर वार्षिक अधिवेशन के समय यथोचित अर्चना-पूर्वक दी जाती है।

सम्मेलन प्रतिवर्ष सुप्रसिद्ध हिन्दी-कवियो की जयन्तियाँ मनाता है। विदेशो से आये हिन्दी-विद्वानो के सम्मानार्थ अथवा ऐसे ही अन्य अवसरो पर सभाएँ आयोजित किया करता है।

सम्मेलन के कार्य-विभाग

मुख्य रूप से सम्मेलन के कार्यकलाप के दो भाग हैं—१—कार्यालय, २—मुद्रणालय। सम्मेलन के मुद्रणालय की गिनती हिन्दी के उच्च कोटि के प्रेसो मे की जाती है। यह मुद्रणालय पूर्ण साधन-सम्पन्न और सुव्यवस्थित है। कार्यालय के विभाग हैं—

१—प्रबन्ध विभाग, २—परीक्षा विभाग, ३—साहित्य विभाग, ४—संग्रहालय, ५—प्रचार विभाग, ६—अर्थ विभाग ।

परीक्षा विभाग के सम्बन्ध मे पहले विस्तार से कहा जा चुका है । दूसरा महत्त्वपूर्ण विभाग साहित्य विभाग है । इस विभाग द्वारा महत्त्वपूर्ण विषयो की पुस्तको का निर्माण, सम्पादन, पुस्तको का प्रकाशन और पुरानी हस्त लिखित दुर्लभ पोथियो का प्रकाशन होता है । साहित्य विभाग द्वारा शासन और वैज्ञानिक-शिक्षण के कार्य मे हिन्दी के व्यवहार को सुलभ बनाने के लिए योजना-बद्ध कोशो का निर्माण और प्रकाशन हुआ है । अब तक ऐसे पाँच कोश प्रकाशित हो चुके है—शासन शब्द कोश, प्रत्यक्ष शरीर कोश, जीव रसायन कोश, भूतत्त्व विज्ञान कोश और चिकित्सा कोश । (गौरी शकर हीरा चन्द—) ओझा—अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप मे 'भारतीय अनुशीलन' नाम से एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन सम्मेलन ने सन् १९३४ मे किया था । सम्मेलन के साहित्य विभाग ने अब तक लगभग २०० पुस्तको का प्रकाशन किया है । साहित्य विभाग से 'सम्मेलन पत्रिका' नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित की जाती है, जिसमे उच्च कोटि के शोध-पूर्ण, गवेषणात्मक और अनुशील-नात्मक लेख प्रकाशित होते है । सम्मेलन-पत्रिका के पाठक देश और विदेश म है । इस पत्रिका का आरभ सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन के परीक्षा-संचालन के निर्णय के साथ हुआ था । इसका प्रथम अक आश्विन शुक्ल १० सवत् १९७० (सन् १९१३) मे प्रकाशित हुआ । पहले यह पत्रिका मासिक थी, बाद मे त्रैमासिक कर दी गई और इसमे शोध-पूर्ण लेख-सामग्री का प्रकाशन होने लगा ।

सम्मेलन सम्प्रति दो और पत्रिकाएँ प्रकाशित करता है—राष्ट्रभाषा सन्देश (पाक्षिक) और माध्यम (मासिक) । इनमे पहला पत्र हिन्दी के प्रचार-प्रसार म गति लाने के लिए प्रकाशित किया जाता है और दूसरा साहित्यिक मासिक है ।

सम्मेलन के पास कार्यालय और मुद्रणालय के लिए अलग-अलग भवन है । और साहित्यिक अतिथियो के ठहरने के लिए कविरत्न सत्यनारायण की स्मृति मे निर्मित 'र———— कुटीर' नाम की एक अतिथिशाला है ।

अंगभूत संस्थाएँ

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा सम्मेलन का प्रमुख अंग है। इसके अतिरिक्त भी प्रादेशिक सम्मेलन तथा अन्य संस्थाएँ सम्मेलन से अपने को सम्बद्ध रखती हैं। उनके प्रतिनिधि वार्षिक अधिवेशन में सम्मिलित हुआ करते थे और स्थायी समिति के संगठन में स्थान पाते थे। इन संस्थाओं में मुख्य हैं— उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन (१९२१), दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन (१९४४), बंग प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, बम्बई राज्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन, विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन नागपुर (१९१९), बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन (१९१९), मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर, हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद, भारतेन्दु समिति कोटा, मध्यभारतीय हिन्दी साहित्य सभा ग्वालियर, बागड़ प्रदेश-साहित्य परिषद् डूँगरपुर (राजस्थान)।

४—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार की योजना को लक्ष्य कर १९१८ में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का सूत्रपात मद्रास में हिन्दी-साहित्य—सम्मेलन के प्रचार-कार्यालय के रूप में हुआ था, इस सूत्रपात की कहानी पीछे हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के इतिहास में विस्तार से आ चुकी है। १९२६ में गाँधी जी की सलाह से इस प्रचार कार्यालय को दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का नाम दिया गया और इसका संविधान बना कर इसे स्वतंत्र रूप से संगठित किया गया। महात्मा गाँधी इसके आजीवन अध्यक्ष चुने गये और मद्रास के प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक 'हिन्द' के सम्पादक श्री ए० रंग स्वामी अय्यंगार उपाध्यक्ष। आठ प्रचारकों का एक दल योजना-बद्ध हिन्दी के प्रचार-कार्य में अग्रसर हुआ, जिसमें पं० हरिहर शर्मा, श्री मोटूरि सत्यनारायण, पं० रघुवरदयालु मिश्र, पं० देवदूत विद्यार्थी, पं० अवधनन्दन, श्री एस० रामचन्द्र शास्त्री श्री पी० सुब्बाराव और श्री दामोदर उण्णा थे

इस प्रकार दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास का स्वतंत्र संस्था के रूप मे वास्तविक आरम्भ १९२७ से हुआ।

सभा को जिन राजनीतिक और सामाजिक नेताओ का सहयोग समय-समय पर मिलता रहा है उनमें प्रमुख है—स्वर्गीय श्री सत्यमूर्ति, डा० पट्टाभि सीतारामैय्या, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, श्री नागेश्वर राव पन्तुलु, श्री के० भाष्यम, श्री रामदास पन्तुलु, श्री संजीव कामत और श्री जगन्नाथ दास। आरभ से सन् १९३६ तक प० हरिहर शर्मा सभा के प्रधान मन्त्री रहे है। उनके बाद श्री मोट्टूरि सत्यनारायण ने प्रधान मन्त्री का कार्य सँभाला। सन् १९६० से श्री एस० आर० शास्त्री सभा के प्रधान मन्त्री हुए। दक्षिण भारत मे हिन्दी को लोकप्रिय बनाने का श्रेय इस सभा को है। इसका कार्य-क्षेत्र मद्रास, आन्ध्र, मैसूर और केरल प्रदेश अर्थात् तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम भाषा-भाषी प्रदेश रहे है।

कार्य और प्रगति—

कार्यकर्ताओं (प्रचारको) का निर्माण और हिन्दी प्रचार-विद्यालय

सभा ने मद्रास के बाहर हिन्दी का प्रचार-कार्य सन् १९२१ से ही आरम्भ किया। उसने इस कार्य के लिए अहिन्दी भाषियो को ही हिन्दी की शिक्षा दे कर नियुक्त किया। १९२२ से सभा के द्वारा परीक्षाओं का आरम्भ होने पर इस कार्य में बड़ी तीव्रता आई। और आज सभा के ७००० हिन्दी-प्रचारक दक्षिण भारत के सभी क्षेत्रों मे हिन्दी के प्रशिक्षण और प्रचार में संलग्न है।

हिन्दी की सेवा के लिए सुयोग्य प्रचारकों के निर्माण की योजना का आरम्भ १९२१ से होता है। हिन्दी की शिक्षा के लिए उस वर्ष दो विद्यालय खोले गये—पहला आन्ध्र मे, गोदावरी के तट पर राजमहेन्द्री के पास धव-लेश्वरम् नामक स्थान मे और दूसरा तमिलनाडु में, कावेरी के तट पर ईरोड नामक स्थान मे। ये दोनो विद्यालय एक वर्ष तक चले और इनमें शिक्षित युवक हिन्दी के प्रचार मे लग गये। प्रचारकों की माँग बढ़ने पर १९२४-२५ मे मद्रास में एक विद्यालय संचालित हुआ, जिसमें दक्षिण भारत के सभी भागों के

विद्यार्थी हिन्दी-शिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए तथा पढाई पूरी करने के बाद हिन्दी के प्रचार मे जुट गये। इस समय सभा मद्रास, तिरुचिरापल्ली और हैदराबाद तीन स्थानों मे हिन्दी-प्रचारक विद्यालय चलाती है। राजमहेन्द्री और तेनाली के हिन्दी- प्रचारक विद्यालय भी सभा से मान्यता-प्राप्त है।

प्रचार-कार्य की प्रगति

प्रचारकों की संख्या बढने के साथ प्रचार-कार्य भी बढता गया। आन्ध्र के गाँवो मे भी लोग हिन्दी पढने की ओर उन्मुख हुए। बहुत ही शीघ्र तिरुवनन्तपुरम, एरणाकुलम्, मंगलोर, कालिकट, मद्रास, तंजौर, कुम्भकोणम्, बंगलोर, मैसूर, हुबली, बेलगाँव, चित्तूर, बेजवाडा, गुण्टूर आदि नगर हिन्दी-प्रचार के केन्द्र हो गये। १६३२ के बाद हाई स्कूल म हिन्दी का प्रवेश हुआ और सरकार से मान्यता प्राप्त स्कूलों मे हिन्दी-पढाई की व्यवस्था होने लगी। १६३५ मे काका कालेलकर जी ने हिन्दी-प्रचार-कार्य को सहयोग देने के लिए दक्षिण भारत की यात्रा की। उन्होने शिक्षा-सम्बन्धी सुझाव देने के लिए सभा के अन्तर्गत एक शिक्षा-परिषद् का गठन किया। और हिन्दी प्रचार-कार्य को सुगठित करने के लिए सभा की अगभूत प्रान्तीय सभाओ की स्थापना की। इन प्रान्तीय हिन्दी-प्रचार सभाओ के कार्यालय बेजवाडा (आन्ध्र), तिरुचिरापल्ली (तमिल), एरणाकुलम् (केरल) और बंगलोर (कर्नाटक) मे स्थापित हुए। बगलोर का कार्यालय अब धारवाड मे है। इनके प्रान्तीय मत्री क्रमशः पी० सुब्बाराव, रघुवरदयालु मिश्र, देवदूत विद्यार्थी तथा सिद्धनाथ पन्त नियुक्त हुए। इधर सभा की एक शाखा दिल्ली मे भी स्थापित हो गई है। इस प्रकार पाँच प्रान्तीय सभाएँ केन्द्रीय सभा-मद्रास से सम्बद्ध होकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार और उसकी लोक-प्रियता को बढाने मे आज कार्य कर रही है—

१. तमिलनाडु हिन्दी प्रचार-सभा।
२. आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी प्रचार-सघ।
३ कर्नाटक हिन्दी प्रचार-सभा

४. केरल हिन्दी प्रचार-सभा।
५. सभा की दिल्ली-शाखा।

१९३२ में 'ज्ञानयात्री मण्डल' तथा १९३४ में 'यात्री दल' स्थापित हुआ। पहले के संस्थापक श्री सिद्धनाथ पन्त थे। 'ज्ञानयात्री मण्डल' के सदस्यों ने उत्तर भारत के प्रमुख हिन्दी-शिक्षा-केन्द्र प्रयाग, काशी आदि स्थानों में जा कर हिन्दी-साहित्य का उच्चस्तरीय अध्ययन किया। और तब दक्षिण भारत लौटने पर हिन्दी के प्रचार-प्रसार में उनको अधिक सफलता मिली। 'यात्री दल' के लोगों ने उत्तर भारत में आकर दक्षिण भारत की भाषाओं, वहाँ हिन्दी के प्रति प्रेम और संस्कृति के सम्बन्ध में जानकारी दी। सन् १९४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में जब नेता तथा कार्यकर्त्ता जेलों में बन्द कर दिये गये तब वहाँ जेलों में भी उन्होंने हिन्दी का प्रचार किया।

१९५० तक दक्षिण भारत के विश्वविद्यालयों में हिन्दी का प्रवेश हो गया। केरल तथा आन्ध्र के स्कूलों में हिन्दी अनिवार्य रूप में पढ़ाई जाने लगी, इसलिए हिन्दी अध्यापकों की माँग बढ़ी। इसकी पूर्ति के लिए मद्रास की केन्द्रीय सभा ने आन्ध्र, मद्रास, केरल, मैसूर प्रदेशों के अपने प्रमुख हिन्दी-प्रचार-केन्द्र के नगरों में हिन्दी के विद्यालय संचालित किये।

हिन्दी-प्रचार के लिए पाठ्य-पुस्तकें

आरम्भ में जब इन प्रदेशों में हिन्दी-प्रचार का कार्य शुरू हुआ तब हिन्दी पढ़ाने के लिए पाठ्यपुस्तकों का अभाव सामने आया। सन् १९२३ में सेठ जमुनालाल बजाज ने 'हिन्दी-प्रचार-प्रेस' एक छापाखाना का प्रबन्ध किया। जिसमें प्रचार-कार्य के अनुकूल पुस्तकों के निर्माण तथा प्रकाशन की सुविधा प्राप्त हुई। श्री हरिहर शर्मा तथा श्री क० म० शिवराम शर्मा ने सबसे प्रथम 'हिन्दी-स्वबोधिनी' पुस्तक तैयार की, यह पुस्तक तमिल तथा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से थी। पं० हृषीकेश शर्मा ने तमिल भाषा में 'स्वबोधिनी' तैयार की। इनके ही आधार पर कन्नड और मलयालम में भी 'स्वबोधिनी तैयार

की गई । इन पुस्तकों से हिन्दी के प्रचार-कार्य में बड़ी सहायता मिली । बाद में आवश्यकतानुकूल इनका संशोधन और परिवर्धन हुआ । पुनः प्रचार-कार्य में प्रगति तथा परीक्षार्थियों की संख्या बढ़ने के साथ नई पाठ्य पुस्तकें तैयार हुईं ।

परीक्षा-संचालन

परीक्षाएँ प्रचार-कार्य का सफल माध्यम रही है । सभा ने प्रचार-कार्य के अनन्तर ही सन् १९२२ से हिन्दी-परीक्षाओं का संचालन प्रारम्भ किया । प्रचार-केन्द्र परीक्षाओं के केन्द्र का भी काम करते थे ।

सन् १९३० तक परीक्षाओं की प्रगति बहुत धीमी रही, तब तक केवल ७५ केन्द्रों में परीक्षाएँ होती थी तथा इस नौ वर्ष की अवधि में प्रारम्भिक परीक्षाओं में ६११६ तथा उच्च परीक्षाओं में ३२ परीक्षार्थी सम्मिलित हुए । सन् १९३५ में केन्द्रों की संख्या ३९४ हो गई, सन् १९४० में ५७८, सन् १९५० में ७४०, सन् १९५५ में १०६४ और १९६० में १३२६ केन्द्रों में परीक्षाएँ होने लगी । सन १९५० में प्रारम्भिक परीक्षाओं में ७८६९७ और उच्च परीक्षाओं ११५४७ परीक्षार्थी सम्मिलित हुए, परीक्षार्थियों की यह संख्या १९६० में क्रमशः ११५८५९ तथा २३०४५ हो गई । इन संख्याओं से दक्षिण भारत में हिन्दी पढ़ने-पढ़ाने की जागरित रुचि का पता लगता है । १९६१ में परीक्षा केन्द्रों की संख्या १३५० हो गई । सभा की हिन्दी-परीक्षाओं में तीन प्रारम्भिक परीक्षाएँ है—प्राथमिक, मध्यमा और राष्ट्रभाषा । इन परीक्षाओं का संचालन सभा की प्रान्तीय शाखाएँ (सभाएँ, जिनका ऊपर उल्लेख हो चुका है) करती है, उच्च-परीक्षाओं का संचालन सभा स्वयं करती है, उच्च-परीक्षाएँ ये है—प्रवेशिका, विशारद पूर्वार्ध, विशारद उत्तरार्ध, प्रवीण, और हिन्दी प्रचारक । राष्ट्रभाषा विशारद और राष्ट्रभाषा प्रवीण उपाधि परीक्षाएँ है, इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण स्नातकों को उपाधियाँ देने के लिए सभा प्रति वर्ष पदवीदान-समारोह का आयोजन करती है ।

कार्य का विस्तार और विभाग

सभा के कार्यों मे विस्तार आ जाने पर सन् १९४९ मे भिन्न-भिन्न विभागो के कार्यों का संचालन करने के लिए अलग-अलग मन्त्री भी नियुक्त हुए, वे है—साहित्य-मन्त्री, परीक्षा-मन्त्री, शिक्षा-मन्त्री। प्रधान मन्त्री के कार्यो मे सहायता के लिए 'संयुक्त मन्त्री' का पद निर्मित हुआ। प्रथम सयुक्त मन्त्री प० रघुवर दयाल मिश्र है।

प्रकाशन-कार्य

सभा के पास अपना प्रेस है। उसने हिन्दी मे उच्चस्तर की पुस्तके और दक्षिण भारतीयों को हिन्दी सीखने के लिए प्रारम्भिक पुस्तके, रीडरे एव कोश प्रकाशित किये हैं, इन पुस्तको की सख्या लगभग ३५० है। पुस्तकों के प्रकाशन और बिक्री का काम सभा का बिक्री-विभाग करता है।

सभा दो पत्रिकाएँ भी प्रकाशित करती है—'दक्षिण भारत' और 'हिन्दी प्रचार-समाचार'। पहली पत्रिका द्वैमासिक है, इसमें दक्षिण भारत की भाषाओं के साहित्य, संस्कृति, इतिहास, समाज और इन क्षेत्रो में काम करने वाले व्यक्तियो के परिचय से सम्बद्ध सामग्री रहती है। दूसरी पत्रिका—'हिन्दी प्रचार-समाचार' मासिक है, इसमे हिन्दी के विद्यार्थियो और प्रचारको के लाभार्थ हिन्दी-साहित्य की विविध सामग्री प्रकाशित होती है।

आयोजन

सभा सन् १९३१ से प्रत्येक वर्ष उत्तीर्ण स्नातको को उपाधि देने के लिए पदवीदान-समारोह का आयोजन करती है। पदवीदान समारोह का दीक्षान्त-भाषण देश के लब्धमान नेताओं, विद्वानों और साहित्यकारों ने किया है। इनमें उत्तर भारत के भी व्यक्ति है जिनको सभा ने दीक्षान्त-भाषण के लिए आमन्त्रित किया था—पं० रामनरेश त्रिपाठी (१९३३), बाबू प्रेमचन्द (१९३४), पंडित सुन्दरलाल (१९३५), बाबू पुरुषोत्तमदास टडन (१९३६),

राजकुमारी अमृतकौर (१९४६), डा० जाकिर हुसैन (१९४८), श्री श्रीप्रकाश (१९५२), डा० राजेन्द्रप्रसाद (१९५६), श्री जगजीवनराम (१९५७)।

पदवीदान-समारोह के अतिरिक्त सभा अपने केन्द्रीय और प्रान्तीय स्तर पर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए अन्य आयोजन भी करती है, इन आयोजनों के लिए प्रान्तीय स्तर पर सुव्यवस्थित संगठन किया गया है, इस संगठन के दो मुख्य भाग हैं—हिन्दी-प्रेमी-मण्डल और उनके द्वारा संचालित हिन्दी-प्रचार-केन्द्र। जो आयोजन किये जाते हैं उनका उद्देश्य हिन्दी का प्रचार बढाने के साथ हिन्दी का उच्च ज्ञानार्जन भी है, आयोजनों के नाम हैं—प्रचारक-सम्मेलन, वाक्-स्पर्द्धा, लेखन-स्पर्द्धा, नाटकों का अभिनय, हिन्दी-सप्ताह, प्रमुख व्यक्तियों के भाषण आदि।

राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था

ऊपर सभा का जो परिचय दिया गया है, उससे उसके कार्य-विस्तार और दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार के उसके ऐतिहासिक महत्त्व का आकलन होता है। इस समय सभा का कार्यालय मद्रास के त्यागराय नगर में है, वहीं उसके विद्यालय और अन्य भवन हैं।

भारत सरकार ने १९६२ में सभा की महत्त्वपूर्ण हिन्दी-सेवा को देखते हुए एक विधेयक बना कर इसका नया संगठन करने की योजना प्रस्तुत की है और इसे राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था घोषित किया है।

५—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

सन् १९३६ में नागपुर—हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर देश के पूर्वी और पश्चिमी अंचल में हिन्दी-प्रचार के लिए गाँधी जी की प्रेरणा से हिन्दी-प्रचार-समिति का गठन किया गया था, यह गठन सम्मेलन का ही अंग था। सन् १९३८ में सम्मेलन का २७वाँ अधिवेशन शिमला में हुआ, उस अधिवेशन में एक निर्णय द्वारा समिति का नाम राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति कर दिया गया और इसका मुख्य कार्यालय वर्धा में ही रहा। समिति की

पहली बैठक ४ जुलाई १९३६ को सेवाग्राम-वर्धा मे महात्मा गाँधी के निवास स्थान पर हुई थी। सम्मेलन के नागपुर-अधिवेशन के समय समिति १५ सदस्यो की बनाई गई थी, सेवाग्राम की बैठक मे ६ अन्य सदस्य मयोजित किये गये और समिति के सदस्यो की संख्या २१ हुई, इनमे चार पदाधिकारी चुने गये, सदस्यो की यह प्रथम नामावली अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, उसे देखने से यह पता चलता है कि सन् १९३६ मे राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम के हमारे प्रमुख कर्णधारो की दृष्टि में हिन्दी-प्रचार का प्रश्न कितना महत्त्वपूर्ण था, पूरी नामावली यह है— १—देशरत्न राजेन्द्रप्रसाद (अध्यक्ष, पदेन सम्मेलन के अध्यक्ष) २—महात्मा गाँधी, ३—प० जवाहरलाल नेहरू, ४—बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, ५—सेठ जमनालाल बजाज (उपाध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष), ६—श्री ब्रजलाल वियाणी, ७—आचार्य नरेन्द्रदेव, ८—काका कालेलकर, ९—प० हरिहर शर्मा, १०—श्री वियोगीहरि, ११—बाबा राघवदास, १२—श्री शकरराव देव, १३—पं० माखनलाल चतुर्वेदी, १४—सरदार नर्मदाप्रसाद सिह (पदेन सम्मेलन के प्रधान मन्त्री), १५—डा० श्रीनाथ सिह (पदेन—सम्मेलन के प्रबन्ध मत्री), १६—श्रीमती लोक सुन्दरी राम, बगलूर, १७—श्रीमती पेरीनबेन केप्टेन, बम्बई, १८—श्रीमती रमादेवी चौधरानी, कटक, १९—श्रीयुक्त गुरुसुरीय गोस्वामी, आसाम, २०—श्री मोहूरि सत्य-नारायण, मद्रास, २१—श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल (सयुक्त मंत्री)।

समिति की स्थापना का उद्देश्य

सन् १९३६ मे समिति की यह स्थापना न केवल हिन्दी-प्रचार के लिए वरञ्च अहिन्दी-भाषी प्रान्तो मे हिन्दी का प्रचार करनेवाली सभी संस्थाओ का एक सम्मिलित संगठन बनाने के लिए भी हुई थी। इस समिति की स्थापना के पूर्व सन् १९३० के बाद से ही हिन्दी-प्रचार की ओर सभी अहिन्दी-भाषी प्रदेश उन्मुख हो रहे थे, स्वराज्य के प्रश्न के साथ हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रश्न भी मुखर हो गया था। प्रदेशो का यह हिन्दी-प्रचार कहीं पर स्वतंत्र रूप से कोई मण्डल या सघ स्थापित कर किया जा

रहा था, कही पर सम्मेलन के परीक्षा-केन्द्र स्थापित कर अथवा दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास से सम्बद्ध संस्था स्थापित कर। जिन प्रदेशो मे वर्धा-समिति की स्थापना के पूर्व से ही हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए स्वतंत्र प्रयत्न किये जा रहे थे, वे प्रदेश है—गुजरात, उत्कल, बंगाल, आसाम और सिन्ध। गुजरात प्रदेश मे सन् १९३५ मे राष्ट्रभाषा प्रचार मण्डल, सूरत की स्थापना हुई थी और श्री मोहनलाल भट्ट ने सन् १९३५ मे ही गुजरात विद्यापीठ तथा 'नवजीवन' के तत्त्वावधान मे हिन्दी-प्रचार का कार्य आरम्भ कर दिया था। उत्कल मे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के १९३२ के पुरी अधिवेशन के अनन्तर १९३३ मे ही राष्ट्रभाषा प्रचार सभा की स्थापना हो गई थी, इस स्थापना की मूल प्रेरणा बाबा राघवदास, देशरत्न राजेन्द्रप्रसाद, श्री सीताराम जी सेक्सरिया और श्री वसन्तलाल जी मुरारका की थी एवं कार्य श्री अनुसूयाप्रसाद पाठक का था। बंगाल मे कलकत्ते की 'पूर्व भारत हिन्दी प्रचार सभा' १९३४ से ही कार्य कर रही थी। आसाम मे १९३४-३५ मे ही महात्मा गाँधी ने और उनकी प्रेरणा से बाबा राघवदास ने हिन्दी-प्रचार का कार्य आरम्भ कर दिया था। सिन्ध में १९११ से ही शिकारपुर की प्रीतम धर्म सभा तथा हैदराबाद मे स्थापित ब्रह्मचारी आश्रम—गिद्दूमल संस्कृत पाठशाला द्वारा हिन्दी का प्रचार किया जा रहा था। तथा स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने हैदराबाद मे नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की थी, जो हिन्दी पढने के लिए रात्रि-पाठशालाएँ चलाती थी। पंजाब मे प्रान्तीय राष्ट्रभाषा-प्रचार सम्मेलन और साहित्यसदन अबोहर के द्वारा १९२५ के पूर्व से ही हिन्दी के प्रचार का कार्य चल रहा था और सम्मेलन की परीक्षाएँ हुआ करती थीं, अबोहर मे सदन का भव्य भवन, उसमें पुस्तकालय तथा हिन्दी का बहुमूल्य संग्रहालय है। बम्बई प्रदेश मे सन् १९१९ (सम्मेलन के इन्दौर-अधिवेशन के बाद) से ही हिन्दी के प्रचार का कार्य आरम्भ हो गया था और १९२१, १९२४ मे हिन्दी पढाने के लिए वर्ग खोले गये थे सन् १९३१ मे उत्साही हिन्दी-प्रेमी युवकों ने हिन्दी-प्रचार-सभा की स्थापना की थी, जिसके अध्यक्ष श्री बेचजी लखनसी नप्पू तथा मंत्री श्री रा० शंकरन् थे।

इस प्रकार वर्धा की समिति की स्थापना के पूर्व अहिन्दी-भाषी प्रान्त स्वतः हिन्दी-प्रचार के कार्य मे रुचि ले रहे थे और इस प्रसंग मे व्यापक प्रयत्न किये जा रहे थे। महात्मा गाँधी ने इस परिस्थिति का अध्ययन किया था और वे स्वतंत्र रूप मे चलनेवाली इन सभी प्रान्तीय संस्थाओ को एक सूत्र मे बाँधना चाहते थे। इस उद्देश्य से ही हिन्दी-प्रचार-समिति की स्थापना वर्धा मे हुई और व्यापकता की दृष्टि से १९३८ मे उसका नाम राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति वर्धा किया गया। एक सूत्र मे गठित होकर संस्थाओ के प्रचार-कार्य मे संलग्न होने से सबसे बड़ा लाभ यह था कि सभी प्रदेशो मे अपने आप हिन्दी के स्वरूप मे एकरूपता स्थापित हो जाती है। वर्धा-समिति की स्थापना के साथ ही सभी प्रान्तीय प्रचार-संस्थाएँ समिति से सम्बद्ध हो गई। और वर्धा-समिति की परीक्षाओ मे सभी प्रान्तो से परीक्षार्थी सम्मिलित होने लगे।

पीछे का इतिहास अध्ययन करने से यह अनुमान होता है कि इस प्रेरणा के पीछे गाँधी जी का भाषा-सम्बन्धी राजनीतिक प्रश्न का समाधान भी अन्तर्हित था। वे हिन्दी का प्रचार चाहते थे, पूरे देश के लिए व्यवहार की एक भाषा वे हिन्दी को स्वीकार करते थे, इसमे तो दो मत हो ही नही सकते। परन्तु उनके सामने प्रश्न हिन्दी के स्वरूप का था, कम से कम जिस स्वरूप को आगे चल कर अहिन्दी-भाषियो मे प्रचारित किया जाता। उस स्वरूप के निर्माण के लिए भी सभी हिन्दी-प्रचार-संस्थाओ की केन्द्रभूत संस्था वर्धा मे स्थापित की गई। वर्धा की हिन्दी-प्रचार-समिति हिन्दी के भावी स्वरूप के प्रश्न और समाधान का एक मात्र अन्तिम निर्णय करती। गाँधी जी का यह उद्देश्य शीघ्र ही सामने आया, वस्तुतः वे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग का हिन्दी-सम्बन्धी स्थापनाओ से सहमत नहीं हो रहे थे, अतः हिन्दी प्रचार-समिति दो वर्ष के अनन्तर ही १९३८ मे राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के रूप मे सामने आयी और तब गाँधी जी ने उसे १९४२ मे अपना अभीप्सित—हिन्दुस्तानी-प्रचार-समिति का रूप देना चाहा। हिन्दी-हिन्दुस्तानी का प्रश्न लेकर महात्मा गाँधी और सम्मेलन की नीतियो मे मतभेद उत्पन्न हो गया, और राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति सम्मेलन का ही अंग बनी रही अतः गाँधी जी हिन्दी के

स्वरूप के सम्बन्ध में सम्मेलन और समिति की नीति से सहमत नहीं हुए। और न सम्मेलन तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के संचालक महात्मा गाँधी की भाषा-नीति को स्वीकार कर सके। ५ अक्टूबर १९४० को राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की एक बैठक महात्मा गाँधी के सेवाश्रम में हुई और उस बैठक में इस विवाद का पूरा स्पष्टीकरण हो गया। इसके फलस्वरूप गाँधी जी और उनके अनुयायी राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति से अलग हो गये और उन्होंने २ फरवरी १९४२ को हिन्दुस्तानी प्रचार-समिति की स्थापना की। इस भाँति अध्ययन करने पर राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति की स्थापना दूरगामी लक्ष्यों से पूर्ण है और हिन्दी के इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। आरम्भ से ही भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में समिति को उलझना पड़ा है। जब १४ सितम्बर १९४९ को संविधान-संसद् में हिन्दी राजभाषा स्वीकार कर ली गई तब समिति की भाषा-नीति का स्पष्ट रूप सामने आया।

समिति की भाषा-नीति

सन् १९४९ के अनन्तर जब संविधान-परिषद ने बहुमत में हिन्दी के स्वरूप को ही राजभाषा बनाये जाने की स्वीकृत दी, समिति ने भी हिन्दी के स्वरूप के सम्बन्ध में अपनी स्पष्ट घोषणा की है और हिन्दी के सहज रूप को (कृत्रिम हिन्दुस्तानी से भिन्न) राष्ट्रभाषा का स्वरूप स्वीकार किया है। समिति के पारित प्रस्तावों के मुख्य अंश ये हैं—

"जो हिन्दी पुराने समय से देशभर में फैली हुई है उसी के क्रमिक विकास से हिन्दी का भावी रूप निखरेगा। हाल में कुछ भाइयों ने यह दिखाने का यत्न किया है कि राष्ट्रीय हिन्दी और प्रान्तीय हिन्दी में भेद है। इस समिति के विचार में इस प्रकार का भेद सर्वथा निर्मूल है और इससे हिन्दी के विकास में कोई लाभ नहीं हो सकता है।

"स्थानीय बोलियों के अतिरिक्त हिन्दी का कोई रूप राष्ट्रीय हिन्दी से भिन्न नहीं है। साहित्यिक और सांस्कृतिक हिन्दी एक है। वही सब प्रदेशों में प्रचलित है उसी के द्वारा राष्ट्रीय कार्य सम्पन्न हो सकेगा और उसी के

क्रमिक विकास में संविधान के अनुसार संस्कृत तथा देश की अन्य भाषाओं का भाग होगा।"

"इस भाषा की लिपि नागरी है। उसमें सब भाषाओं के शब्दों का, जो चालू हैं, समावेश और नये शब्दों के निर्माण में किसी भाषा के उपयुक्त शब्दों का बहिष्कार नहीं है।

"विशेष वैज्ञानिक विषयों की शब्दावली को छोड़ कर यह भाषा सरल और जनता की बोलचाल की भाषा से मिलती हुई होनी चाहिए।

"इस समिति की धारणा है कि भारतीय संविधान में भी नागरी लिपि में लिखित हिन्दी के इसी रूप की कल्पना की गई है और वह मानती है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का जो रूप आगे विकसित होगा उसके निर्माण में देश की समस्त भाषाओं का सहयोग होगा।"

"राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति की भाषा नीति के बारे में कभी कभी यह प्रश्न उठा है कि वह विधान से स्वीकृत हिन्दी का प्रचार करती है या उससे भिन्न किसी भाषा का? समिति का विश्वास है कि समिति की भाषा नीति इतनी स्पष्ट रही है कि उसके सम्बन्ध में ऐसी कोई शंका उठनी नहीं चाहिए। इतना होने पर भी समिति की कार्य-समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि क्योंकि विधान में नागरी लिपि और हिन्दी के स्वीकार करने में समिति का भी कुछ प्रयत्न और हाथ रहा है, इसलिए हमारा तो कर्त्तव्य तथा निश्चय है कि हम विधान की ३५१वीं धारा के अनुरूप हिन्दी का प्रचार करें और केन्द्रीय सरकार तथा राज्यों को भी हिन्दी के प्रचार और प्रसार के कार्य में सहयोग और सहायता प्रदान करें।"

परीक्षा-संचालन

समिति ने स्थापना के साथ ही हिन्दी की परीक्षाएँ शुरू कीं। प्रारम्भ को दो वर्षों में उसने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से हिन्दी-प्रवेश, हिन्दी-परिचय और हिन्दी-कोविद—तीन परीक्षाएँ लीं। १९३८ से इन परीक्षाओं का संचालन समिति स्वयं करने लगी। और जनवरी १९३८ में उसने अपनी

परीक्षा-समिति गठित कर ली। इस समय समिति द्वारा १३ परीक्षाएँ ली जाती हैं—

१—राष्ट्रभाषा प्राथमिक, २—राष्ट्रभाषा प्रारम्भिक, ३—राष्ट्रभाषा प्रवेश, ४—राष्ट्रभाषा परिचय, ५—राष्ट्रभाषा कोविद, ६—राष्ट्रभाषा रत्न, ७—राष्ट्रभाषा आचार्य, ८—राष्ट्रभाषा अध्यापन विशारद, ९—राष्ट्रभाषा अध्यापन कोविद, १०—राष्ट्रभाषा प्रान्तीय भाषा परीक्षा (प्रारम्भिक तथा प्रवेश परीक्षा), ११—राष्ट्रभाषा महाजनी प्रवेश, १२—राष्ट्रभाषा बातचीत, १३—राष्ट्रभाषा आलेखन कोविद। 'परिचय उर्दू' की परीक्षा भी पहले ली जाती थी, अब हटा दी गई है।

समिति की परीक्षाओं का प्रचार अत्यन्त वेग से हुआ है, इस सम्बन्ध मे कुछ आँकड़े ये है—सन् १९३७ मे समिति की परीक्षाओं के १८ केन्द्र थे, ७ प्रचारक थे और ६१९ परीक्षार्थी सम्मिलित हुए थे; सन् १९४० में केन्द्र १५०, प्रचारक २२६ और परीक्षार्थी १५९८५ रहे। सन् १९५० मे यह संख्या क्रमशः १७२१, २२४१ और १८५७४४ हो गई। सन् १९६० मे इस संख्या मे लगभग दूनी वृद्धि हुई—केन्द्रो की संख्या ३२५५ रही, प्रचारकों की संख्या ६९४० हो गई और परीक्षाओ मे २२८४८३ परीक्षार्थी सम्मिलित हुए। अब समिति की परीक्षाएँ वर्ष मे दो बार हुआ करती है। परीक्षाओ मे ३० प्रतिशत संख्या महिलाओ की होती है।

समिति की सर्वोच्च परीक्षा राष्ट्रभाषा रत्न और राष्ट्रभाषा आचार्य है। रत्न का आरम्भ १९४४ मे हुआ, तब उसमे ७९ परीक्षार्थी सम्मिलित हुए थे, परीक्षार्थियो की यह संख्या १९५० मे ३०२ और १९६० में १४१६ हो गई। आचार्य परीक्षा का आरम्भ १९५८ से हुआ, पहली बार उसमे २६ परीक्षार्थी सम्मिलित हुए। यह संख्या प्रायः यही बनी रही।

प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितियाँ इन परीक्षाओ मे अपने परीक्षार्थी बैठाती है।

परीक्षा का पूरा संचालन वर्धा से होता है। केवल 'राष्ट्रभाषा प्राथमिक' परीक्षा को स्वयं लेने का अधिकार वर्धा-समिति ने महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार

समिति पुणे और उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा कटक को सौंप दिया है।

इन परीक्षाओं (विशेष रूप से कोविद और राष्ट्रभाषा रत्न) को भारत सरकार, अनेक राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा संस्थाओं द्वारा मान्यता प्राप्त है।

समिति का संगठन

समिति का संगठन हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की अंगभूत संस्था के रूप में सम्मेलन की नियमावली नियम ५३-५८ के अनुसार हुआ था किन्तु इसका अपना विकास स्वतन्त्र संस्था के रूप में ही सामने आया। अपनी भाषा-सम्बन्धी रीति-नीति के लिए यह पूर्ण स्वतंत्र है। सम्मेलन के अधिकारी पदेन इसके सदस्य होते हैं। आरम्भ में इसकी स्थापना के समय २१ व्यक्तियों की समिति बनी थी, यह उल्लेख पहले किया जा चुका है। शीघ्र ही जब इसका विस्तार सभी प्रान्तों में हो गया तब प्रत्येक प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार-समितियों के प्रतिनिधियों को भी संगठन में स्थान देना पड़ा। अब समिति का संगठन ३५ सदस्यों का है, इनमें १९ सदस्य प्रान्तीय समितियों के प्रतिनिधि होते हैं, ७ सदस्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के पदाधिकारी होते हैं और ९ सदस्यों का निर्वाचन सम्मेलन की स्थायी समिति करती है। इन्हीं में से ही मंत्री का चुनाव तीन वर्ष के लिए किया जाता है। आरंभ में समिति के मंत्री श्री मोटूरि सत्यनारायण जी थे। उनके मद्रास की सभा के कार्य में व्यस्त हो जाने के कारण ५ जुलाई १९३८ को श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल मंत्री निर्वाचित हुए। १९४२ ई० में गाँधी जी की हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना हुई, तब श्रीमन्नारायण अग्रवाल उस संस्था में चले गये और उसका मंत्री-पद सँभाला। उस समय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन की प्रेरणा से श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का मन्त्रित्व स्वीकार किया। सन् १९५१ तक वे इसके मन्त्री रहे। उनके बाद से गाँधी जी के 'नवजीवन' के व्यवस्थापक श्री मोहनलाल भट्ट समिति के मंत्री हैं। इन्होंने एक लम्बे अरसे से समिति के व्यापक कार्य भार को सँभाल रखा है

परीक्षाओ का संचालन करने के लिए अलग से एक परीक्षा-समिति भी है, जिसके सदस्यो की सख्या २१ है। इनमे १५ सदस्य उन प्रान्तीय समितियो के प्रतिनिधि होते है जिनमे समिति की परीक्षाओ का सचालन होता है।

समिति अपनी प्रान्तीय समितियो को विद्यालय-संचालन एव भवन-निर्माण के लिए यथाशक्ति अनुदान भी देती है। प्रान्तीय समितियो को प्रदेशीय सरकारो से भी अनुदान एव समय-समय पर अन्य सहायताएँ प्राप्त होती रहती हैं। सभी प्रान्तीय समितियो के अपने भवन है और उनमे कई एक विद्यालयो का सचालन भी करती है। कुछ अपनी पत्रिकाएँ भी निकालती है और उनका निजी प्रकाशन भी है। इन समितियों ने भी अपने संगठन को मजबूत बनाने के लिए उसे जिला स्तर पर विभक्त कर रखा है। वर्धा समिति से सम्बद्ध प्रान्तीय समितियो की सूची निम्नलिखित है। इस सूची मे उनकी स्थापना का वर्ष, प्रकाशित होनेवाली पत्रिका का नाम, उसका प्रकाशन वर्ष तथा वर्तमान सचालक मत्री का नाम भी दे दिया गया है—

(१) गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद (१९३७)
पत्रिका—राष्ट्रवीणा (१९५०)
मन्त्री-सचालक—श्री जेठालाल जोशी

(२) महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे (१९३७)
पत्रिका—जगभारती (१९४७), अब बन्द है।
मन्त्री-सचालक—श्री प० मु० डांगरे।

(३) बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बम्बई (१९३७)
मन्त्री-संचालक—श्री कान्तिलाल जोशी

(४) उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक (१९३७)
पत्रिका—राष्ट्रभाषा-पत्र
मन्त्री-सचालक—श्री अनुसूया प्रसाद पाठक

(५) असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, शिलॉग (१९३८)
मन्त्री —श्री जीतेन्द्रचन्द्र चौधुरी

(६) पश्चिम बंग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कलकत्ता (१९३९)
मन्त्री-सञ्चालक—श्री रेवतीरंजन सिनहा

(७) सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समिति जयपुर (१९३९)
मन्त्री-सञ्चालक—श्री दौलतराम शर्मा

(८) पंजाब प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अबोहर (१९४८)
सञ्चालक—श्री दौलतराम शर्मा

इन प्रान्तों में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा (१९३६) की स्थापना के पूर्व से ही हिन्दी-प्रचार का कार्य किसी न किसी संघ या सभा आदि से हो रहा था, वर्धा-समिति की स्थापना हो जाने पर उन संस्थाओं ने अपने को वर्धा-समिति से सम्बद्ध कर लिया और प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के रूप में परिणत हो गईं।

(९) विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर (१९३८)
मन्त्री-सञ्चालक—पं० हृषीकेश शर्मा

(१०) मणिपुर राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, इम्फाल (१९४०)
मन्त्री-संचालक—श्री ललध्वज शर्मा

(११) दिल्ली प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, दिल्ली (१९४८)
मंत्री-संचालिका—श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन

(१२) मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल (१९५२)
मन्त्री-संचालक—श्री बैजनाथ प्रसाद दुबे

(१३) मराठवाड़ा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, औरंगाबाद (१९५६)
मन्त्री-सञ्चालक—श्री विष्णुदत्त शर्मा

(१४) कर्नाटक प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हुबली (१९४७)
सञ्चालक—श्री वासुदेव चिन्तामणि बस्ती

(१५) जम्मू-काश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर (१९५६)
सञ्चालक—श्री शम्भुनाथ जी पारिभू

(१६) बेलगाँव जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बेलगाँव (१९५१)
जिला संगठक—श्री द० पा० साटम

इस प्रकार राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति वर्धा का पूरे देश मे एक सुसगठित परिवार है, जो हिन्दी के प्रचार-प्रसार के कार्य मे निष्ठा के साथ संलग्न है। १९५१ से हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग मे आपसी मतभेद के कारण जो गतिरोध पैदा हुआ और अहिन्दी भाषी-प्रदेशो मे हिन्दी-प्रचार के कार्य को सम्मेलन द्वारा कोई गति नही मिली, उस अभाव को वर्धा-समिति ने पूरा किया है।

राष्ट्रभाषा-अध्ययन-मन्दिर

वर्धा-समिति की स्थापना के साथ ही हिन्दीतर प्रदेशो मे हिन्दी-प्रचार का काम करने के लिए प्रचारकों की आवश्यकता प्रतीत हुई। अतः सन् १९३७ मे राष्ट्रभाषा-अध्ययन-मन्दिर की स्थापना वर्धा-समिति ने की। ७ जुलाई १९३७ को महात्मा गांधी ने इस मन्दिर का उद्घाटन किया था। सन् १९४२ मे समिति द्वारा राष्ट्रभाषा-रत्न परीक्षा का संचालन किये जाने के बाद उक्त अध्ययन-मन्दिर का कार्य बन्द कर दिया गया। इसके प्रधानाध्यापक पं० हृषीकेश शर्मा थे। पाँच वर्ष की अवधि मे इस अध्यापन-मन्दिर से ४९ हिन्दी-प्रचारक निष्णात हो कर निकले।

हिन्दी-पढ़ाई की व्यवस्था

समिति ने १९५२ मे 'राष्ट्रभाषा महाविद्यालय' की स्थापना की। श्री रसूल अहमद अबोध इसके प्रधानाध्यक हुए। समिति ने अपनी संचालित परीक्षाओ की शिक्षण-व्यस्था के लिए यह एक प्रशसनीय कार्य किया है। इस विद्यालय मे राष्ट्रभाषा रत्न तथा अध्यापन विशारद तक की पढ़ाई होती है। आसाम-मणिपुर के नागा विद्यार्थियो को भी हिन्दी पढाने की व्यवास्था यहाँ की गई है, प्रत्येक वर्ष १०—१२ नागा विद्यार्थी यहाँ शिक्षा देने के लिए बुलाये जाते है समिति उनको छात्रवृत्ति देती है। जो नागा विद्यार्थी यहाँ पढ कर निष्णात हुए है वे लौट कर अपने प्रदेश में हिन्दी का कार्य कर रहे है।

वर्धा के इस 'राष्ट्रभाषा महाविद्यालय' के अन्तर्गत प्रत्येक प्रान्तीय समिति

द्वारा महाविद्यालयो का संचालन होता है। वर्धा-समिति प्रत्येक प्रान्तीय समिति को इस कार्य के लिए ५०० रु० प्रतिवर्ष अनुदान देती है। इसके अतिरिक्त अन्य सचालित हिन्दी-विद्यालयो को भी प्रतिमास ५० रु० सहायता समिति से मिलती है। शिक्षण-व्यवस्था का स्वरूप तीन भागो मे विभक्त है—(१) शिक्षण केन्द्र, (२) राष्ट्रभाषा विद्यालय, (३) राष्ट्रभाषा महाविद्यालय। पहले मे परिचय तक कक्षाओं की पढाई होती है। दूसरे मे 'कोविद' तक की पढाई की व्यवस्था रहती है। और तीसरे मे 'रत्न' तक की पढाई की जाती है। १९६२ के आँकड़ों के अनुसार प्रत्येक प्रान्तीय समितियो का योग मिला कर ५९७ शिक्षण केन्द्र, ५३४ राष्ट्रभाषा विद्यालय और ३६ महाविद्यालय सचालित हो रहे है।

प्रकाशन-कार्य

वर्धा समिति दो मासिक पत्र प्रकाशित करती है। पहला है 'राष्ट्रभाषा'। यह मासिक पत्र जुलाई १९४३ से निकल रहा है और समिति का मुख पत्र है इसके पूर्व 'सब की बोली' एवं 'राष्ट्रभाषा समाचार' क्रमशः समिति द्वारा प्रकाशित हुए थे, जिनका स्थान अब राष्ट्रभाषा ने लिया है। राष्ट्रभाषा मे परीक्षार्थियो के उपयोगी लेख, हिन्दी-प्रचार एवं परीक्षा-सम्बन्धी सामग्री होता है।

समिति ने १९५० से दूसरे मासिक पत्र 'राष्ट्रभारती' का प्रकाशन आरम्भ किया। यह सास्कृतिक और साहित्यिक पत्रिका है। इसमे हिन्दीतर भाषाओं का साहित्य भी हिन्दी के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।

समिति का एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन 'कविश्री'—माला है। इस माला में देश की १४ भाषाओं के प्रतिनिधि कवियों की रचनाएँ मूल तथा हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित की गई है। मूल भी नागरी लिपि मे है। अब तक इस माला मे २५ पुस्तके प्रकाशित हुई है।

समिति के पास अपना प्रेस 'राष्ट्रभाषा प्रेस' है। समिति ने अब तक ७५ पुस्तके प्रकाशित की है।

मूर्ति-स्थापना

वर्धा-समिति के निर्माण मे महात्मा गाँधी, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टडन और सेठ जमनालाल बजाज का बडा हाथ रहा है। १९६२ मे समिति ने जब अपनी रजत-जयन्ती मनाई तब उक्त तीनो महापुरुषो की स्मृति मे उनकी प्रतिमा की स्थापना समिति के प्रागण मे की है। इन प्रतिमाओं का अनावरण क्रमशः स्वराष्ट्र-मन्त्री माननीय लालबहादुर शास्त्री, सेठ गोविन्ददास और मध्य-प्रदेश के राज्यपाल श्री ह० वि० पाटस्कर ने किया था।

राष्ट्रभाषा पुस्तकालय

उक्त नाम से समिति का अपना एक विशाल पुस्तकालय है। जिसमे हिन्दी, अग्रेजी, बँगला, मराठी गुजराती आदि भाषाओं की १२ हजार पुस्तके सगृहीत हैं। इसके साथ एक हिन्दी मन्दिर पुस्तकालय भी है जिसमे डेढ हजार पुस्तके हैं, वह शहर मे सचालित होता है।

आयोजन

सन् १९४९ से समिति अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन किया करती है। १९६२ मे उसने अपना ११ वाँ अ० भा० रा० प्र० सम्मेलन किया है और अपनी रजत-जयन्ती मनाई है। इस अवसर पर प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू ने अपना उद्घाटन-सन्देश समिति को भेजा था, उसका एक अश यह है—

"राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने इन २५ वर्षो मे जो काम किया है उसको सब लोग जो हिन्दी मे दिलचस्पी लेते है जानते है और उसकी बहुत प्रशसा करते है। मैने इस काम को अकसर देखा है और मुझे बहुत पसन्द आया है, विशेष कर समिति ने जो राष्ट्रभाषा का ढग निकाला है, यानी सादी और सरल हो, वह मुझे खासतौर से पसन्द आया है। अकसर आज कल हमारी हिन्दी बहुत कठिन हो गई है जिसको आम लोग नहीं समझते। मै आशा करता हूँ कि राष्ट्रभाषा समिति की हिन्दी का प्रयोग अधिकतर हो। उससे हिन्दी को भी लाभ होगा और उसके पढनेवालो को भी।"

समिति ने इस रजत-जयन्ती के अवसर पर राष्ट्रभाषा के कर्मठ कार्य-कर्ताओं का सम्मान करने के लिए उनको 'राष्ट्रभाषा गौरव' की उपाधि प्रदान कर अभिनन्दित किया है, उपधिप्राप्त सभी आठ हिन्दी-कार्यकर्ता अहिन्दी भाषी-प्रदेशो के है।

इसके पूर्व समिति ने अहिन्दी-भाषी प्रदेशो मे हिन्दी की सेवा करनेवाले तीन कर्मठ सेवको—प० हृषीकेश शर्मा, श्री जेठालाल जोशी और पं० हरिहर शर्मा का विशेष सम्मान अपने तीन विभिन्न अधिवेशनो—१९५६, १९५८, १९६०—मे किया है।

महात्मा गाँधी पुरस्कार

समिति ने अपने दूसरे अहमदाबाद-अधिवेशन (१९५०) मे अहिन्दी-भाषी हिन्दी-लेखको को १५०१) रु० का महात्मा गाँधी-पुरस्कार देने का निश्चय किया था। यह धनराशि समिति अपने ही बजट से देती है, जिसे एक महत्त्व-पूर्ण निश्चय कहा जाना चाहिए। अब तक यह पुरस्कार ९ अहिन्दी-भाषी हिन्दी-लेखको को मिल चुका है।

समिति समय-समय पर हिन्दी के प्रचार-प्रसार और परस्पर विचारो के आदान-प्रदान के लिए भाषण एव निबन्ध की स्पर्धाएँ (प्रतियोगिताएं) भी आयोजित करती है। एवं इसी प्रकार के अन्य आयोजन प्रवर्तित करती है।

समाचार भारती

समिति ने अपने नवें दिल्ली अधिवेशन (१९५९) के अवसर पर एक निश्चय के अनुसार 'समाचार-भारती' संस्था की स्थापना की है। जिसका लक्ष्य देश की भाषाओ के माध्यम से समाचारो का प्रसारण है। १ जनवरी १९६७ से हिन्दी, गुजराती और मराठी भाषाओ मे इसका कार्यारम्भ किया जा चुका है।

समिति के कार्य-विभाग और भवन

समिति का कार्य १० विभागो में बँटा हुआ है—१ प्रचार २ परीक्षा

३. साहित्य निर्माण, ४. प्रकाशन, ५. पुस्तक-बिक्री, ६. राष्ट्रभाषा और राष्ट्र-भारती, ७. पुस्तकालय, ८. प्रेस, ९ भवन और १०. अर्थ।

समिति के इस समय ८ भवन है, जिनकी लागत ६ लाख रुपये होगी। समिति के पास कुल १६ एकड भूमि है। समिति अपनी प्रान्तीय समितियों के भवन-निर्माण के लिए भी सचेष्ट रही है और उन्हे अनुदान दिया है।

वर्धा-समिति का पूरा इतिहास और परिचय १९३६ से अब तक के हिन्दी के संघर्ष और प्रगतियो का एक प्रमुख अंश है।

६—हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

दक्षिण भारत की हिन्दी-प्रचारिणी संस्थाओ मे सभा का इतिहास वर्धा समिति से पूर्व का और दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा मद्रास के बाद का है। राष्ट्रभाषा हिन्दी और देवनागरी लिपि के प्रचार-प्रसार को लक्ष्य कर इस सभा की स्थापना सन् १९३५ मे हुई। और अपने इस लक्ष्य के प्रति सभा सदैव दृढ रही है। दिसम्बर सन् १९४९ (स० २००६) मे सभा के आमन्त्रण पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का ३७वॉ अधिवेशन यहाँ सम्पन्न हुआ था।

अहिन्दी-भाषियो मे हिन्दी का प्रचार करना, हिन्दी साहित्य के प्रति रुचि जागरित करना और प्रान्तीय भाषाओ से हिन्दी का परस्पर आदान-प्रदान एव स्नेह बढाना—सभा के प्रकट उद्देश्य है। इनकी पूर्ति के लिए सभा हिन्दी परीक्षाओ का संचालन, उपयुक्त साहित्य का निर्माण तथा पुस्तकालयो का संचालन करने के अतिरिक्त सदा जन-सम्पर्क एवं सरकारी शिक्षा-विभाग के सहयोगो के प्रति प्रयत्नशील रहती है।

परीक्षा-संचालन

सभा की परीक्षाओं का आरम्भ सन् १९४१ से हुआ। उच्च परीक्षाओं के नाम है—हिन्दी शिक्षक, विशारद, भूषण, विद्वान। ये परीक्षाएँ सम्प्रति ४५० केन्द्रों मे होती है और लगभग ४० हजार विद्यार्थी इनमें बैठते है, जिनमे

३० प्रतिशत महिलाएँ होती है। परीक्षार्थियो मे ६० प्रतिशत अहिन्दी-भाषी होते है। परीक्षाएँ वर्ष मे दो बार होती है।

सभा की परीक्षाओ को भारत सरकार तथा आन्ध्र प्रदेश, मैसूर प्रदेश और महाराष्ट्र प्रदेश की सरकारों ने अपनी-अपनी मान्यताएँ प्रदान की है।

साहित्य-निर्माण

सभा ने अपने साहित्य विभाग के द्वारा हिन्दी साहित्य की पुस्तको का प्रादेशिक भाषाओ मे तथा प्रादेशिक भाषाओ के साहित्य का हिन्दी में अनुवाद करा कर पुस्तके प्रकाशित की है। गम्भीर और उच्च साहित्य के निर्माण के प्रति भी सजगता सभा ने दिखाई है। 'अजन्ता' नाम की एक साहित्यिक पत्रिका सभा द्वारा कई वर्षो तक प्रकाशित होती रही है।

भारत सरकार की सहायता से सभा कुछ विशिष्ट प्रकाशनों के लिए काम कर रही है। इन प्रकाशनो मे मराठी, तेलुगु, कन्नड और उर्दू साहित्य का इतिहास, हिन्दी-उर्दू कोश तथा उर्दू-हिन्दी कोश है।

दक्खिनी हिन्दी के साहित्य को हिन्दी के निकट लाने के लिए यहाँ 'दक्खिनी प्रकाशन समिति' नाम की एक संस्था काम करती है। सभा ने इसे आर्थिक और बौद्धिक सहयोग दिया है।

पुस्तकालय-योजना

हिन्दी-साहित्य के प्रति पठन-पाठन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए प्रादेशिक भाषा के पुस्तकालयो को सभा हिन्दी-पुस्तको का अनुदान देती है। यह कार्य कई जिलो मे सम्पन्न हुआ है।

इन कार्यो के अतिरिक्त सभा बराबर सरकार को हिन्दी-प्रचार के कार्यो मे सहयोग देती रही है और इस विषय मे वह प्रदेशीय सरकार के शिक्षा-विभाग का पूरक अग है।

हिन्दी-प्रचार के कार्य मे सभा का गौरव-पूर्ण स्थान है और आन्ध्र प्रदेश में हिन्दी के प्रसार का श्रेय इसको है।

७—महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूर्णे

इस संस्था की स्थापना महामहोपाध्याय श्रीदत्तोवामन जी पोतदार और श्री गो० प० नेने ने सन् १९४५ मे किया। इसके पूर्व वे वर्धा-समिति से सम्बद्ध महाराष्ट्र प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के संचालक थे। परीक्षाओ और विद्यालयो का संचालन तथा प्रकाशन आदि कार्यो द्वारा सभा ने हिन्दी के प्रचार मे स्तुत्य कार्य किया है। १९४९ मे अखिल भारतीय हिन्दी परिषद्, नई दिल्ली की स्थापना होने पर यह सभा उससे सम्बद्ध हो गई।

परीक्षाएँ

सभा १९४६ से निम्नाकित परीक्षाओ का संचालन करती है—

राष्ट्रभाषा-पहली, राष्ट्रभाषा-दूसरी, राष्ट्रभाषा-प्रबोध, राष्ट्रभाषा-प्रवीण, राष्ट्रभाषा-पडित, राष्ट्रभाषा-सम्भाषण-योग्यता, अनुवाद-पंडित।

सभा की परीक्षाओं को भारत सरकार द्वारा मान्यताएँ प्राप्त है। बडी सख्या में परीक्षार्थी इनमे सम्मिलित होते है।

शिक्षण और प्रचार कार्य

सभा स्थान-स्थान पर शिक्षण-वर्गों का प्रबन्ध करती है। उच्च परीक्षाओं के लिए शिक्षक तैयार करने के हेतु विद्यालय चलाती है। व्याख्यान-मालाओ का आयोजन करती है।

सभा के पास २० हजार पुस्तको का एक बृहद् ग्रन्थालय है।

प्रकाशन

सभा के पास निजी बड़ा प्रेस है। उसने उपयुक्त पुस्तको का प्रकाशन किया है। और 'राष्ट्रवाणी' नाम की एक सांस्कृतिक, साहित्यिक मासिक पत्रिका का प्रकाशन करती है।

८—मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद्, बंगलौर

इस परिषद् की स्थापना १९४३ मे हुई। इसने कन्नड़भाषी मैसूर राज्य मे हिन्दी के प्रचार-प्रसार का स्तुत्य कार्य किया है। परीक्षा-संचालन, शिक्षण-व्यवस्था और प्रकाशनो द्वारा इस संस्था के कार्यों का विस्तार हुआ है।

परीक्षाएँ

परिषद् की ओर से प्रथमा, मध्यमा, प्रवेश, उत्तमा, हिन्दी रत्न (उपाधि परीक्षा) परिक्षाएँ ली जाती है। आरम्भ से ही मैसूर सरकार द्वारा इन परीक्षाओ को मान्यता प्राप्त है, अब भारत सरकार ने भी अपनी मान्यताएँ परिषद् की परीक्षाओं को प्रदान की है। परिषद् के २०० परीक्षा केन्द्र हैं और परीक्षाओ मे लगभग २५ हजार विद्यार्थी सम्मिलित होते है। परीक्षाएँ वर्ष में दो बार होती है।

परिषद् हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की परीक्षाओ का केन्द्र भी है।

शिक्षण-व्यवस्था

परिषद् की ओर से उसके केन्द्रीय कार्यालय मे अध्यापन की व्यवस्था की जाती है। हिन्दी उत्तमा और हिन्दी रत्न परीक्षाओ के लिए शिक्षण के विशेष वर्ग चलाये जाते है। वाक्स्पर्धा, प्रचारक-सम्मेलन, विचारक-गोष्ठी आदि कार्य-क्रम भी आयोजित होते है। 'हिन्दी अध्यापको का प्रशिक्षण केन्द्र' भी परिषद् की देख-रेख मे मैसूर सरकार की आर्थिक सहायता से चलता है।

परिषद् का अपना एक पुस्तकालय है, जिसमें २० हजार से अधिक पुस्तके है। राज्य के मुख्य नगरो मे परिषद् द्वारा हिन्दी-पुस्तकालयों का संचालन होता है।

प्रकाशन

परिषद् ने अपनी प्रारम्भिक परीक्षाओ के लिए पाठ्यग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। इन प्रकाशनो में हिन्दी-कन्नड़ अनुवादमाला और हिन्दी-कन्नड़ व्याकरण जैसी पुस्तकें भी हैं।

९—अखिल भारतीय हिन्दी परिषद्, नई दिल्ली

भारतीय संविधान के अनुसार राजभाषा हिन्दी के निर्माण, विकास एवं संवर्धन को लेकर १९४९ में इस परिषद् की स्थापना नई दिल्ली में हुई। इस उद्देश्य से काम करनेवाली संस्थाओं को सम्बद्ध करना भी संस्था का लक्ष्य है, सम्प्रति १३ संस्थाएँ परिषद् से सम्बद्ध हैं। इसके प्रथम अध्यक्ष डॉ० राजेन्द्रप्रसाद थे। श्री शंकरराव देव और श्री मो० सत्यनारायण इसके संयोजक चुने गये थे, जो बाद में मन्त्री रहे।

परिषद् की ओर से आगरा में एक विद्यालय का सचालन हुआ। जहाँ अहिन्दी प्रदेश के विद्यार्थी हिन्दी की शैक्षणिक योग्यता प्राप्त करने के हेतु आते हैं। यहाँ से उत्तीर्ण स्नातकों को पारंगत उपाधि दी जाती है। इस विद्यालय का संचालन और नियमन अब भारत सरकार का केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय किया करता है।

अन्य संस्थाएँ

आगे अन्य ऐसी संस्थाओं का उल्लेख किया जाता है, जिनका इतिहास पूर्व-उल्लखित संस्थाओं से कुछ भिन्न है, ये ऐसी संस्थाएँ हैं, जो अब प्रचार-कार्य के अतिरिक्त परीक्षाओं के संचालन की ओर अधिक उन्मुख रही है या जिन्होंने हिन्दी के स्थान पर 'हिन्दुस्तानी' भाषा की स्थापना का प्रयास किया है अथवा अब जिनके प्रचार-कार्य की गति धीमी पड़ गई है।

१०—बम्बई हिन्दी विद्यापीठ

इस विद्यापीठ की स्थापना १९३८ में हुई। यह विद्यापीठ हिन्दी की कई परीक्षाएँ लेता है, जिनमें हिन्दी भाषारत्न, साहित्य सुधाकर और साहित्य रत्नाकर उच्च परीक्षाएँ हैं, इन परीक्षाओं को भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है। परीक्षाओं के केन्द्र विभिन्न प्रदेशों में है जिनकी संख्या ८४७ है

विद्यापीठ के पास अपना प्रेस है। इसने निजी प्रकाशन भी किये हैं। हिन्दी-प्रचार को लक्ष्य कर सांस्कृतिक कार्य-क्रमो का आयोजन विद्यापीठ करता है।

११–भारतीय विद्यापीठ, बम्बई

१९४२ मे ज्ञानलता मंडल की स्थापना हुई थी, उसने १९४९ में भारतीय विद्यापीठ का संचालन किया। हिन्दी-प्रचार को लक्ष्य कर विद्यापीठ परीक्षाओ का संचालन, पुस्तको का प्रकाशन और सास्कृतिक कार्य-क्रमो का आयोजन करता है। रत्न और आचार्य विद्यापीठ की उच्च परीक्षाएँ हैं, कुछ राज्य सरकारों ने इनको मान्यता प्रदान की है।

१२–गुजरात विद्यापीठ

इस विद्यापीठ की स्थापना १९२० मे महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन के साथ हुई थी, जो विद्यार्थी असहयोग-आन्दोलन में सरकार के महाविद्यालयों एव शालाओं का बहिष्कार कर रहे थे उनकी शिक्षा के लिए इस विद्यापीठ का संचालन किया गया। उस समय महात्मा गाँधी स्वयं इसके उपकुलपति बने थे, आचार्य गिडवानी, आचार्य कृपलानी और आचार्य काका साहेब कालेलकर जैसे विद्वानों का सहयोग इस विद्यापीठ को प्राप्त था।

इस विद्यापीठ ने हिन्दी-शिक्षा को प्रमुख स्थान अपने शिक्षण कार्य मे दिया। १९३५ में इसने 'नवजीवन' ट्रस्ट के सहयोग से हिन्दी-प्रचार के कार्य को गुजरात मे विस्तृत किया।

१९४२ में जब हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना गाँधी जी की प्रेरणा से की गई तो इस विद्यापीठ ने हिन्दी के स्थान पर हिन्दुस्तानी के प्रचार को अपना लक्ष्य बनाया। अर्थात् हिन्दुस्तानी भाषा और उसके साथ नागरी और फारसी दोनों लिपियों का प्रचार इसका लक्ष्य रहा। १९४५ मे

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा ने गुजरात का अपना कार्य गुजरात विद्यापीठ को ही सौंप दिया था।

संविधान मे हिन्दी भाषा और नागरी लिपि को स्वीकार किये जाने के बाद विद्यापीठ ने दो लिपियो का अपना आग्रह समाप्त कर दिया।

बम्बई और गुजरात प्रदेश मे इस विद्यापीठ के प्रति बडा आदर है। सम्प्रति विद्यापीठ हिन्दी की पाँच परीक्षाएँ लेता है—(१) हिन्दी पहली, (२) हिन्दी दूसरी, (३) हिन्दी तीसरी, (४) विनीत, (५) हिन्दी सेवक। परीक्षाएँ वर्ष मे दो बार होती है। तीसरी, विनीत और सेवक परीक्षाओ को भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है।

१३—हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा

इस सभा की स्थापना का उल्लेख राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति वर्धा के इतिहास में किया जा चुका है। हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का जन्म महात्मा गाँधी के नेतृत्व मे २ मई १९४२ को हुआ। इसका लक्ष्य हिन्दी के स्थान पर ऐसी भाषा का प्रचार करना था जो उर्दू-भाषी मुसलमानों को भी स्वीकार हो तथा नागरी के साथ फारसी लिपि के अपनाये जाने का भी इसका आग्रह रहा है। १९४५ में हिन्दुस्तानी साहित्य तैयार करने के लिए एक बोर्ड कायम हुआ, उसकी एक उपसमिति बनी, जिसके प्रमुख निरीक्षक डॉ० ताराचन्द थे। १९४४ से सभा ने हिन्दुस्तानी लिखावट, हिन्दी पहली, हिन्दी दूसरी और हिन्दी तीसरी परीक्षाओ का सचालन आरम्भ किया था। गुजरात राष्ट्रभाषा प्रचार सभा तथा हिन्दुस्तानी प्रचार सभा बम्बई—दो प्रदेशीय संस्थाएँ इससे सम्बद्ध हुई थीं।

१९४५ मे काका साहेब कालेलकर जब जेल से बाहर आये तब उन्होंने इसके प्रचार-कार्य के लिए दौरा किया।

गुजरात मे हिन्दुस्तानी-प्रचार का कार्य गुजरात विद्यापाठ को सौंप दिया

गया। आज गुजरात विद्यापीठ हिन्दी की जो परीक्षाएँ लेता है उनका पूर्व-निर्धारण हिन्दुस्तानी प्रचार सभा ने किया था।

१९४७ मे सभा का कार्यालय बम्बई चला गया। वही अब इसका कार्य होता है। जो प्राय: नही के बराबर है। भारत सरकार ने इसकी विद्वान् और काबिल परीक्षाओं को मान्यता दी थी।

१४—हिन्दी विद्यापीठ, देवघर (बिहार)

इस विद्यापीठ की स्थापना स० १९८६ वि० मे हुई। यह परीक्षाओं का संचालन करता है और एक साहित्य महाविद्यालय चलाता है। विद्यापीठ की चार परीक्षाएँ है—हिन्दीविद्, प्रवेशिका, साहित्य भूषण और साहित्यालंकार। बिहार से बाहर भी इसके परीक्षा केन्द्र है। इसकी साहित्यालंकार (उपाधि) परीक्षा के प्रति बड़ा सम्मान है और बिहार सरकार एवं बिहार के विश्व-विद्यालयो से इस परीक्षा को विभिन्न मान्यताएँ प्राप्त है।

हिन्दी का प्रचार करनेवाली दक्षिण भारत की ये तीन संस्थाएँ भी है, जिनका कार्य हिन्दी-प्रचार की दृष्टि से स्तुत्य है—

१५—तिरुवांकुर हिन्दी प्रचार-सभा तिरुअनतपुरम्

१६—साहित्यानुशीलन समिति—मद्रास

१७—कर्नाटक हिन्दी प्रचार सभा—धारवाड

उत्तर भारत की निम्नांकित दो संस्थाएँ भी हिन्दी के प्रचार और हिन्दी साहित्य के संवर्धन में योगदान करती रही हैं, इनके पास अपना निजी भवन और अच्छा पुस्तकालय है—

१८—नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा (उ० प्र०)

१९—नागरी प्रचारिणी सभा, आरा (बिहार)

इन संस्थाओं के अतिरिक्त प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन और अन्य साहित्यिक सांस्कृतिक संस्थान भी हिन्दी-प्रचार की उन्नत संस्थाएँ है जो क्रमश

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग और नागरी प्रचारिणी सभा काशी से सम्बद्ध है। सम्मेलन और सभा के इतिहास मे इसका उल्लेख किया जा चुका है। ऐसी संस्थाओं में—

२०—उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

अब सन् १९६४ से अपनी तीन परीक्षाएँ लेता है—साहित्य-प्रवेश, साहित्यस्नातक, साहित्यशिरोमणि। इन परीक्षाओं की संज्ञा 'राष्ट्र भाषा परीक्षाएँ' है, इनकी विशेषता यह है कि केवल खड़ीबोली हिन्दी का अब तक की विविध विधाओं का साहित्य ही इनके पाठ्य-क्रम मे है। सितम्बर सन् १९६६ में प्रदेशीय सम्मेलन ने अपने द्वादश अधिवेशन के समय इन परीक्षाओं का दीक्षान्त-समारोह भी किया है।

प्रदेशीय सम्मेलन की स्थापना सन् १९२१ मे हुई थी। इसने कचहरियों में हिन्दो तथा नागरी लिपि के प्रवेश के लिए आन्दोलन किया है और इस सम्बन्ध की आवश्यक पुस्तकें प्रकाशित की है।

प्रदेशीय सम्मेलन हिन्दी-सेवी गण्यमान्य विद्वानों को अपनी 'साहित्य-वारिधि' की उच्च उपाधि स्थायी-समिति के निश्चय के अनुसार प्रदान करता है। यह उपाधि ताम्रपत्र पर अर्चना-पूर्वक दी जाती है। गत १९६६ के अधिवेशन मे हिन्दी के सात विद्वानों को यह उपाधि दी गई है।

सन् १९५१ में एक दूसरे उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना भी हुई थी, जिसने सरकार से अनुदान प्राप्त कर हिन्दी के एक-दो उपयोगी प्रकाशन किये है।

५

रचनात्मक संस्थान

रचनात्मक संस्थान शीर्षक से यह नही समझना चाहिए कि पीछे जिन सस्थाओ का उल्लेख किया गया है उन संस्थाओ ने ऐसे रचनात्मक कार्यों की ओर ध्यान नहीं दिया है, उनमे से अनेक सस्थाओं ने इस दिशा मे अच्छा प्रयास किया है और नागरी प्रचारिणी सभा काशी का कार्य तो इस दृष्टि से बहुत ही प्रशंसनीय है। यहाँ अब कुछ ऐसी संस्थाओं का परिचय दिया जा रहा है जो हिन्दी के प्रचार-प्रसार, परीक्षा-संचालन आदि मे रुचि न लेकर विद्वद्-गोष्ठियों के आयोजन और हिन्दी में उत्कृष्ट साहित्य के निर्माण के प्रति प्रयत्नशील रही है। और इस क्षेत्र मे उन्होने हिन्दी की अमूल्य सेवाएँ की है।

१—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

इस अकादमी की स्थापना २० जनवरी १९२७ को उस समय की संयुक्त प्रान्तीय सरकार ने की थी। सर तेजबहादुर सप्रू इसके पहले अध्यक्ष थे। हिन्दी और उर्दू दोनो भाषाओ की उन्नति इसका लक्ष्य था। विस्तार से इसके उद्देश्य ये थे—

(१) विशिष्ट विषय की सर्वोत्तम पुस्तकों पर पुरस्कार देना।

(२) वैतनिक अनुवादकों द्वारा पुस्तकों का हिन्दी तथा उर्दू मे अनुवाद करना और अकादमी के माध्यम से उन्हें प्रकाशित

(३) विश्वविद्यालयों तथा साहित्यिक संस्थाओं आदि को दिये गये अनुदान से मौलिक अथवा अनूदित पुस्तकों की रचना के लिए प्रोत्साहित करना।

(४) अकादमी के फेलोशिप के लिए विख्यात लेखकों का चुनाव करना।

आज इस संस्था द्वारा भारत सरकार और अमेरिकी दूतावास ने भी अंग्रेजी पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी मे कराया है।

समय-समय पर अकादमी ने विभिन्न विषय के अधिकारी विद्वानों का व्याख्यान आयोजित किया है। इन विद्वानों में म० म० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा भी है, जिनका सहयोग अकादमी को मिला है, उनके व्याख्यान को 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' नाम से आकदमी ने प्रकाशित किया था।

अकादमी के पास एक अच्छा पुस्तकालय और अब अपना निजी भवन है। इसने अब तक कई उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया है। जिनमे विज्ञान की भी पुस्तके है, प्रदेशीय सरकार इसे प्रति वर्ष आर्थिक अनुदान देती है। 'हिन्दुस्तानी' नाम की शोध-पूर्ण त्रैमासिक पत्रिका अकादमी प्रकाशित करती है।

इसके संगठन मे उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों के हिन्दी-विभाग के प्रतिनिधि तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग और नागरी प्रचारिणी सभा काशी के भी प्रतिनिधि होते है। इसके अध्यक्ष और सचिव का निर्वाचन उत्तरप्रदेश सरकार स्वयं करती है।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी भाषी प्रदेश की सरकारों ने ऐसी दूसरी संस्थाओं को भी जन्म दिया है जो हिन्दी को समृद्ध करने के लिए काम करती हैं। इनका परिचय आगे दिया जाता है—

२—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

११ अप्रैल १९४७ को बिहार राज्य की विधान सभा ने इस परिषद् की स्थापना का निश्चय किया था। परिषद् का मूल उद्देश्य साहित्य-निर्माण

और विद्वानो का सम्मान ही था पर विस्तार मे उसके तीन भाग थे—भारतीय भाषाओ के साहित्य का संवर्धन, राष्ट्रभाषा और बिहार की राजभाषा हिन्दी मे कला, विज्ञान तथा अन्य विषयों के उपयोगी एवं मौलिक ग्रन्थो का प्रकाशन, तथा बिहार की प्रमुख बोलियों का अनुशीलन।

१९ जुलाई १९५० को श्री शिवपूजन सहाय इसके मन्त्री नियुक्त हुए, तभी से वास्तविक रूप में इसके कार्य का आरम्भ हुआ। परिषद् का विधिवत् उद्घाटन बिहार के तत्कालीन राज्यपाल श्री माधव श्री हरि अरणे ने ११ मार्च १९५१ को किया।

परिषद् ने अपने उद्देश्यो की सिद्धि के लिए प्रशंसनीय प्रयास किया है। इसने दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज का काम करवाया है, विशिष्ट विद्वानो के भाषणो का आयोजन किया है और उन भाषणो को ग्रन्थ रूप में प्रकाशित किया है। भोजपुरी, मैथिली और मराठी भाषाओ के शब्द-कोश प्रस्तुत करने के लिए प्रयास किये जा रहे है।

परिषद् का प्रति वर्ष समारोह आयोजित होता है, इसी अवसर पर विद्वानों के भाषण भी कराये जाते है। 'परिषद् पत्रिका' नाम से इसका शोध-पूर्ण त्रैमासिक विगत छह वर्षों से प्रकाशित हो रहा है, जो 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' और 'सम्मेलन पत्रिका' के समकक्ष है।

परिषद् के प्रकाशित ग्रन्थ हिन्दी के गौरव है। 'मध्य एशिया का इतिहास' 'दोहाकोश' 'योरोपीय दर्शन' 'सार्थवाह' 'हर्षचरित-एक अध्ययन' 'कम्बन रामायण' 'काव्य मीमासा' 'कथा सरित्सागर' 'ईख और चीनी'—जैसे मौलिक एवं अनुवाद, सम्पादन और अनुशीलन का मानदड स्थापित करनेवाले ग्रन्थ इस परिषद् ने प्रकाशित किये हैं।

३—हिन्दी-समिति उत्तर प्रदेश, लखनऊ

उत्तर प्रदेश सरकार प्रति वर्ष ५० हजार से अधिक धनराशि हिन्दी के लेखको को अखिल भारतीय स्तर पर उनकी मौलिक कृतियों के लिए पुरस्कार

मे देती है। इसके अतिरिक्त उसने राष्ट्रभाषा हिन्दी की समृद्धि के लिए डॉ० सम्पूर्णानन्द के मुख्यमंत्रित्व-काल मे हिन्दी-समिति की स्थापना की है, जिसका उद्देश्य हिन्दी मे कला और विज्ञान के मौलिक ग्रन्थो तथा अन्य भाषाओ के उत्कृष्ट ग्रन्थों के अनुवाद का प्रकाशन है। अब तक समिति ने लगभग ८० ग्रन्थ प्रकाशित किये है, जिनमे कोश, ज्योतिष और विज्ञान के भी उत्कृष्ट ग्रन्थ है। डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी इसके प्रथम अध्यक्ष थे। आज कल डॉ० दीनदयालु गुप्त अध्यक्ष हैं।

४—राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर

राजस्थान सरकार ने राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर की स्थापना आजादी के बाद की है। अकादमी द्वारा प्रदेशीय स्तर पर हिन्दी-लेखको को उनकी मौलिक कृतियों पर पुरस्कार दिया जाता है। विशिष्ट विद्वानो के व्याख्यान का आयोजन होता है। अकादमी हिन्दी मे 'मधुमती' नामक साहित्यिक, सास्कृतिक मासिक प्रकाशित करती है और उर्दू में 'नखलिस्तान' नाम की त्रैमासिक पत्रिका निकालती है। राजस्थान के लेखको और विद्वानों का सहयोग इस अकादमी को प्राप्त है।

मध्यप्रदेश की शासन-साहित्य-परिषद् भी अखिल भारतीय एवं प्रदेशीय स्तर पर हिन्दी-लेखको को उनकी मौलिक कृतियो पर पुरस्कार देती है। हरियाणा सरकार का भाषा-विभाग हिन्दी के दो पत्र 'सप्तसिन्धु' और 'जन-साहित्य' प्रकाशित करता है। हिन्दी के साहित्य-निर्माण की ओर प्रयत्नशील सस्थाओ मे राजस्थानशोध-संस्थान जोधपुर, भारत सरकार की साहित्य अकादमी और हिन्दी साहित्य अकादमी कुरुक्षेत्र का भी नाम लिया जाना चाहिए।

इन सरकारी सस्थाओं के अतिरिक्त दूसरी महत्त्वपूर्ण संस्था है—

५—भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग (विश्वविद्यालय)

यह परिषद् समस्त के हिन्दी अध्यापकों का संगठन है

इस संगठन का आरम्भ सन् १९४३ में हुआ। इसका मुख्य लक्ष्य हिन्दी भाषा, साहित्य तथा संस्कृति के अध्ययन एवं अनुसन्धान कार्य को विश्वविद्यालयीय स्तर पर अग्रसर करना है। अपने इस उद्देश्य को लेकर परिषद् ने कई प्रशंसनीय कार्य किये हैं।

इसके वार्षिक अधिवेशन विभिन्न विश्वविद्यालयों में आयोजित हुए हैं। इन अधिवेशनो मे विचार-गोष्ठियो द्वारा परिषद् भाषा तथा साहित्य की अनेक समस्याओ का हल और नई योजनाओं का प्रारूप प्रस्तुत करती है। अनुसन्धान एवं पारिभाषिक शब्दावली के क्षेत्र मे परिषद् का कार्य प्रशंसनीय है। 'हिन्दी-अनुशीलन' नाम से शोधपूर्ण त्रैमासिक पत्रिका परिषद् प्रकाशित करती है।

राष्ट्रभाषा के हितैषियों एवं गण्यमान्य विद्वानो का सहयोग सदैव परिषद् को मिलता रहा है।

अन्य रचनात्मक संस्थानो मे राम वन, सतना और वीरेन्द्र केशव साहित्य-परिषद्, टीकमगढ़ (सन् १९३०) (मध्यप्रदेश) का भी नाम उल्लेखनीय है।

६

राष्ट्रभाषा हिन्दी

जनसंख्या के विचार से हिन्दी विश्व की तीसरी भाषा है। उत्तरी चीनी और अंग्रेजी के बाद इसका स्थान है। अंग्रेजी का बहुत विस्तार अंग्रेजों के साम्राज्य विस्तार के साथ हुआ है। मूलतः अंग्रेजी जितने लोगों की भाषा है उनकी संख्या हिन्दी-भाषियों और हिन्दी समझनेवालों से कम है। इस प्रकार चीनी भाषा के बाद दूसरा स्थान हिन्दी का होता है। चीनी भाषियों की संख्या ४४ करोड़ ४० लाख, हिन्दी-भाषियों की संख्या १९ करोड़ १५ लाख, रूसी भाषियों की संख्या १५ करोड़ ६० लाख है और अंग्रेजी भाषी २७ करोड़ ८० लाख है।

हिन्दी की लगभग २० उपभाषाएँ अथवा बोलियाँ है। इस रूप में भारत की ४४ प्रतिशत जनसंख्या की हिन्दी मातृभाषा है। इस ४४ प्रतिशत में बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, पंजाब और हिमाचल प्रदेश की गिनती की जायगी। भारत का आधा भाग इसे प्रचलित और व्यावहारिक भाषा के रूप मे प्रयोग करता है।

हिन्दी की लिपि और उसके शब्दों तथा अर्थों का उच्चारण एवं बोध कुछ इतना वैज्ञानिक अर्थात् सहज है कि हिन्दी की लोकप्रियता अपने आप बढ़ी है। पहले अध्याय मे हिन्दी की इस व्यापकता पर प्रकाश डाला गया है। हिन्दी मे दूसरी भाषाओं के शब्दों को आत्मसात् करने की बड़ी क्षमता है और आज हिन्दी मे अनेक शब्द दूसरी भाषाओं के है। यह भारत देश के विशाल क्षेत्र की मातृभाषा है, जहाँ की यह मातृभाषा नही है, वहाँ भी यह आसानी से बोली और समझी जाती है, हिमालय से ले कर कन्याकुमारी तक आज इसके माध्यम से हमारे कार्य-व्यवहार को जो सौविध्य प्राप्त है वह

कभी इतिहास मे संस्कृत के माध्यम से प्राप्त सौविध्य से भी अधिक उत्कृष्ट है। हिन्दी मे ही भारत के अतीत के इतिहास की लम्बी सांस्कृतिक परम्परा का बोध सुरक्षित है, जो अधिकांश मे समाज को नई प्रगति देनेवाले सन्तों की वाणी से मुखर हुआ है। आज हिन्दी को समृद्ध करने के लिए कई क्षेत्रों मे वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावलियों का निर्माण भी अत्यन्त लगन से किया गया है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में जिन व्यक्तियों एवं संस्थाओं ने पिछली शताब्दी मे अटूट श्रम किया हैं वे किसी लोभ से प्रेरित नही थे, उनको किसी शासन ने प्रोत्साहन नही दिया था। और पिछले कुछ वर्षों मे केवल उर्दू भाषा तथा फारसी लिपि को छोडकर किसी भारतीय भाषा या उनकी लिपि ने हिन्दी भाषा और नागरी लिपि को अपने अवरोध के रूप में नहीं स्वीकार किया है, आजादी के पूर्व अर्थात् जब तक शासन-तंत्र ने अंग्रेजी के प्रति अपना दुराग्रह नही शुरू किया तब तक सर्वत्र अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में भी हिन्दी को अपने घर की तरह सौहार्द्र मिलता रहा है। अहिन्दी-भाषी क्षेत्रो मे हिन्दी के अच्छे लेखक पिछली अर्धशती से पैदा हुए है, आज भी है। विदेशों में भी हिन्दी भाषा और साहित्य के अध्ययन के प्रति लोग उन्मुख है। इस प्रकार पिछले अतीत, विगत की अर्धशती और आज के वर्तमान को जब हम देखते हैं तब कही कोई भी हिन्दी की ऐसी दुर्बलता नही प्रकट होती जिससे यह मन्द स्वर से भी कहा जा सके कि हिन्दी अभी भारत की राष्ट्रभाषा के योग्य नही है परन्तु संविधान मे इसे राष्ट्रभाषा (राज भाषा) स्वीकार करके भी केवल राष्ट्र-भक्त जनता को संतोष दिया गया है, हिन्दी उपेक्षित ही है।

सन् १९५० में राष्ट्र के समस्त व्यवहार मे हिन्दी के प्रयोग के लिए १५ वर्ष की अवधि दी गई थी। पन्द्रह वर्ष बीत जाने पर वह अवधि फिर बढ गई और अभी अंग्रेजी बनी ही रहेगी, अंग्रेजी कब टलेगी इसके लिए कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। हिन्दी-भाषी प्रदेशीय सरकारो को जब पन्द्रह वर्ष की अवधि के बाद भाषा और लिपि के व्यवहार का १९६४ में निश्चय करना पड़ा तब केवल बिहार और राजस्थान सरकार ने ही निर्भयता के साथ हिन्दी को सर्वत्र राजकाज में व्यवहृत करने के लिए अपने निश्चय की

घोषणा की। वैसे मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश की सरकारो ने भी यह निश्चय किया है। किन्तु हिन्दी की जन्म-भूमि उत्तरप्रदेश को विधान सभा मे हिन्दी के प्रश्न को लेकर उस समय जो हंगामा हुआ और हिन्दी के समर्थक विरोधी-दलों को जो उत्तर मिला, वह सब कुछ ऐसा था जो राष्ट्रीय दृष्टि से लज्जा-जनक था। इन अनेक प्रयत्नो के बावजूद कहना यही पड़ता है कि शासन के व्यवहार मे हिन्दी अब भी उपेक्षित है। इतने बड़े राष्ट्र में, जिसका पुराना इतिहास हमे कम से कम पाँच हजार वर्षो की जानकारी देता है, जिसकी एक लम्बी ऐतिहासिक सांस्कृतिक परम्परा है, उसकी अपनी भाषा के रूप में हिन्दी पूरे देश मे समझी-जानी जाती है और आज से नहीं लगभग सात सौ वर्षों से हिन्दी की यह व्यापकता अग्रसर होती रही है, किन्तु हमारे स्वतंत्र देश के शासन में अंग्रेजी का व्यवहार होता है, अंग्रेजी जो हमें पराधीन करने वाले विजेताओं की भाषा थी और इस रूप में ही आज भी जिसकी छाप जनता पर है। विश्व के इतिहास में और आज के वर्तमान मे यह अनहोनी घटना है।

दिसम्बर १९२७ मे महात्मा गाँधी झरिया की एक विराट सभा में पधारे थे, कोयले की खानों के मजदूरों की ओर से उनको एक अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया था, वह अंग्रेजी मे था, यह जान कर गाँधी जी ने उसे सभा मे पढने नहीं दिया। २० जनवरी १९२८ के 'यंग इंडिया' मे उनका वक्तव्य प्रकाशित हुआ—

"उन हजार लोगो मे जो सभा में आये थे, मुश्किल से शायद पचास अंग्रेजी जानते होगे। भारी बहुसंख्या उनकी थी जो हिन्दी आसानी से समझ सकते थे, और एक बड़ी संख्या उनकी थी जो बंगाली जानते थे। उक्त संगठन के अगुआ बंगाली व्यक्ति थे। यदि अंग्रेजी का प्रयोग मेरे लिए किया गया था तो मैं कहूँगा कि वह व्यर्थ था। वे अभिनन्दन-पत्र बँगला मे लिख सकते थे और मुझे उसका हिन्दी या अंग्रेजी अनुवाद दे सकते थे। परन्तु यदि अंग्रेजी अभिनन्दन-पत्र उस बड़ी सभा पर थोपा जाता तो नेताओ का अनादर ही होता। मैं आशा करता हूँ कि शीघ्र ही वह समय आ रहा है जब श्रोतागण

ऐसी सभाएँ छोडकर चले जायेंगे जहाँ सभा की कार्यवाही उस भाषा मे की जाती है जिसे अधिकाश लोग नही समझ सकते ।"

गाँधी जी का अन्तिम वाक्य ही राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा की कुंजी है। जनतंत्र की सरकार मे यदि जनता की ही भाषा का व्यवहार राजकाज मे नही होता तो इसकी जिम्मेदारी अथवा कमजोरी जनता पर ही थोपी जायगी, जनता उनको शासन सौपती ही क्यो है जो उसकी भाषा की उपेक्षा करते है? जनता की भाषा कुछ है और उसके चुने हुए प्रतिनिधि किसी दूसरी भाषा मे बोलते हैं, क्या यही जनतंत्र का अर्थ है? इसका अर्थ है जनता नही है। गाँधी ने अपना अभिनन्दन-पत्र अग्रेजी मे होने के कारण नही पढ़ने दिया था, आज राज्यपाल और राष्ट्रपति के भाषण अंग्रेजी में होते हैं, यह अन्तर जनता की निद्रा का प्रतीक है।

बहुत सत्य बात है कि आज शासनतन्त्र और जनता मे दूरी पैदा हो गई है और जब शासनतंत्र के निर्माण मे हाथ जनता का है तब भाषा की यह दूरी जनता के चाहने पर ही दूर होगी। इस दूरी के लिए कोई कारण नही है। हमारे हिन्दी के समर्थक नेताओ—डा० सम्पूर्णानन्द, डा० राम-मनोहर लोहिया, डा० रघुवीर, डा० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' आदि ने अपने वक्तव्यों में भली भाँति यह स्पष्ट कर दिया है कि हिन्दी की उपेक्षा निष्कारण हो रही है। पिछली शती में देश के जो गण्यमान्य नेता हुए हैं, उनमें जो अहिन्दी भाषी रहे है उन्होने भी मुक्तकठ से हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने का समर्थन किया है। नीचे ऐसे कुछ उद्धरण दिये जा रहे है—

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

अंग्रेजी के विषय मे लोगों की जो कुछ भी भावना हो, पर मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि हिन्दी के बिना हमारा कार्य नही चल सकता। × × जो सज्जन हिन्दी भाषा द्वारा भारत में एकता पैदा करना चाहते है, वे निश्चय ही भारत-बन्धु हैं।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

एक विदेशी भाषा के लिए जैसी मजबूरी भारत मे है वैसी कही नही है। जिस शिक्षा को प्राप्त करने मे हमे बीस-पच्चीस वर्ष व्यय करने पडते है वह देश की भाषाओं के माध्यम से सात-आठ वर्ष मे प्राप्त की जा सकती है। × × × × हमे व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। हम कोई भी लिपि अपनाएँ, यह बात ध्यान में रहनी चाहिए कि वह लिपि सुगमता और प्रवाह के साथ लिखी जा सके और देखने मे सुन्दर हो। उसमे विभिन्न आर्य तथा द्रविड भाषाओं की ध्वनियो को व्यक्त करने की क्षमता भी होना चाहिए, मेरे विचार से देवनागरी ही प्रधानतः ऐसी भाषा है। (१९०५)

महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी

मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है, पूरी आजादी तो हमें अंग्रेजी भाषा की गुलामी छोडने पर ही मिलेगी। (१९१८)

महाराज सयाजीराव गायकवाड़

यदि हिन्दी को भारतवर्ष के लिए राष्ट्रभाषा के रूप मे स्वीकार किया जाय तब हमें अंग्रेजी सीखने की आवश्यकता का अनुभव नही करना चाहिए। (१९३३)

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

कुछ लोगो का विचार है कि बँगला राष्ट्रभाषा हो, क्योंकि इसमे उच्च कोटि का साहित्य है। हिन्दी मे उच्च साहित्य है अथवा नही, यह विवाद-ग्रस्त विषय उठाना व्यर्थ है। हिन्दी व्यापक रूप से भारत मे बोली जाती है, और इसमे ग्रहण शक्ति है तथा यह सरल है। (१९३८)

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ

यदि हम प्रत्येक भारतीय के नैसर्गिक अधिकारो के सिद्धान्त को स्वीकार करते है तो हमे राष्ट्रभाषा के रूप मे उस भाषा को स्वीकार करना चहिए जो देश के सब से बड़े भूभाग मे बोली जाती है और जिसे स्वीकार करने की सिफारिश महात्मा जी ने हम लोगो से की है अर्थात् हिन्दी । (१९३८)

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

हिन्दी के द्वारा उत्तर और दक्षिण के कार्य मे तथा भाव-विनिमय मे सुविधा होगी। यह धारणा बिलकुल भ्रमात्मक है कि उर्दू की उत्पत्ति इस्लाम से हुई है। उर्दू को इस्लाम और हिन्दी को हिन्दू भाषा मानना बिलकुल गलत है। जिस भी लिपि में लिखी जाय, भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी है, इसके नाम से भी ऐसा ही बोध होता है। (१९३८)

श्री श्रीनिवास शास्त्री

यदि मुझे पुराने बादशाहो के अधिकार काम मे लाने के लिए दिये जायें तो मैं एक काम यही करूँ कि देश मे एक भाषा और एक लिपि का व्यवहार हो। (१९३४)

श्रीमती अम्बु जम्बाल

मेरे दिल मे आशा बँध गई है कि हिन्दी के द्वारा ही भिन्न-भिन्न प्रान्त एक सूत्र में पिरोये जा सकते है और उस माध्यम के द्वारा ही विभिन्न भाषा-भाषियो के हृदय में ऐक्य की भावना जाग्रत हो सकती है। (१९३३)

श्री जोश मलीहाबादी

हिन्दी और उर्दू मे कोई फर्क नही है। हिन्दी के सरकारी जबान बन

जाने को हम मुसलमानों के लिए क्यों न्यामत समझ रहे है ? इसलिए समझ रहे हैं कि देवनागरी लिखाई मुल्कभर में आम हो जायगी। (१९४७)

श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर

हिन्दी भारतवर्ष की सामान्य भाषा होनी चाहिए।

डॉ० रामकृष्ण भण्डारकर

भिन्न प्रदेशों की एक सामान्य भाषा बनाने का सम्मान हिन्दी को ही मिलना चाहिए।

श्री फज़ल अली

हिन्दी भारत की स्वाभाविक भाषा है। हिन्दी को न सिर्फ राष्ट्रभाषा होने का अधिकार है बल्कि यदि उसके प्रचार और विकास की ओर उचित ध्यान दिया गया तो वह भी समय आ सकता है जब वह समस्त एशिया कीभाषा बने।

श्री ख्वाजा हसन निजामी

बँगला, बर्मी, गुजराती और मरहठी वगैरह सब जबानों से ज्यादा रिवाज हिन्दी या नागरी जबान का है।

श्री हरिकृष्ण महताब

मुझे पूर्ण विश्वास है कि चाहे इस समय इस सम्बन्ध में कैसा ही वाद-विवाद और विरोध क्यों न चल रहा हो, एक,न एक दिन भारतवर्ष में राष्ट्रीयता अपने आप को दृढता-पूर्वक अभिव्यक्त करेगी और देश के लिए एक राजभाषा की मांग होगी और वह राजभाषा हिन्दी के अतिरिक्त और कोई भाषा नहीं हो सकती। इस स्थिति के आने तक हिन्दी के कार्यकर्ताओं को धैर्य-पूर्वक कार्य करना पड़ेगा।

७

विदेशों में हिन्दी

भारत से बाहर हिन्दी का प्रचार और उसका सम्मान दो क्षेत्रों में हो रहा है। एक क्षेत्र तो वह है जहाँ हमारी भारतभूमि के निवासी बसे हुए हैं, जैसे—बर्मा, लंका, वेस्टइंडीज, दक्षिण अफ्रीका और मारीशस। दूसरा क्षेत्र उन उन्नत राष्ट्रों का है जो ४५ करोड़ की आबादीवाले इस विशाल देश की सर्वाधिक जन-संख्या में बोली जानेवाली भाषा और उसके साहित्य के प्रति स्वतः जिज्ञासु हैं, इन राष्ट्रों में विशेषरूप से सोवियत रूस, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, ग्रेटब्रिटेन, जापान, चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका में हिन्दी और उसके साहित्य के प्रचार-प्रसार, अनुवाद एवं अनुशीलन का अच्छा काम हुआ है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की परीक्षाओं का एक केन्द्र हिन्दी प्रचारिणी सभा लांगदोताई-मारीशस में है। इसके व्यवस्थापक हैं श्री एस० एम० भगत। सम्मेलन का दूसरा केन्द्र गाँधी हिन्दी हाई स्कूल जियावडी ब्रह्मा में है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की परीक्षाओं के कई केन्द्र विदेश में हैं। दक्षिण अफ्रीका में विशेषरूप से समिति के तत्त्वावधान में हिन्दी के प्रचार-प्रसार का काम हुआ है। इसका कारण यह है कि वहाँ हमारे भारतीय सन् १८६० से जाकर बसे हुए हैं। अफ्रीका के दक्षिणी और पूर्वी भाग में समिति के २५ से ऊपर परीक्षा-केन्द्र हैं। पश्चिमी अफ्रीका में एक केन्द्र है। दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी सीखने के लिए नियमित रूप के रात्रि-पाठशालाएँ चलायी जाती हैं। वर्धा-समिति इस कार्य के लिए दक्षिण अफ्रीका में नियमित रूप से

वार्षिक अनुदान भी दिया करती है। वहाँ हिन्दी सीखनेवाले तीन हजार से ऊपर विद्यार्थी है। दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी के पहले प्रचारक स्वामी शंकरानन्द जी हैं, उनके बाद स्वामी भवानीदयाल सन्यासी ने यह कार्य किया। सन् १९४७ में नरदेव जी वेदालंकार ने यहाँ पहुँचकर हिन्दी-प्रचार कार्य को विशेष बल प्रदान किया। १९४८ में उन्होंने एक हिन्दी-सम्मेलन बुलाया और उसमें निश्चय करके हिन्दी-शिक्षा-संघ नाताल की स्थापना की, पुनः इसके द्वारा सभी जगह रात्रि-पाठशालाओं आदि के आयोजन किये गये।

अफ्रीका का हिन्दी-प्रचार एक तरह से भारतीयों से ही सम्बन्धित है। यही बात मारीशस के लिए कही जा सकती है। मारीशस मे हिन्दी-प्रचारिणी सभा प्रचार-कार्य मे संलग्न है। मारीशस छोटा-सा द्वीप है, इसकी जनसंख्या पाँच लाख है, जिसमे तीन लाख भारतीय है। सन् १९१३ मे स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी ने यहाँ हिन्दी-प्रचार का कार्य आरम्भ किया। मारीशस मे वर्धा-समिति और सम्मेलन दोनो के परीक्षा-केन्द्र चलते है। मारीशस की तरह भारतीयों का दूसरा उपनिवेश फिजी है जहाँ हिन्दी का व्यापक प्रचार है। भारत सरकार ने मारीशस, फिजी, वेस्टइंडीज, ब्रिटिश गायना और जमेका के भारतीयों मे हिन्दी-प्रचार के लिए सहायताएँ दी है। अन्य जिन देशो मे वर्धा-समिति के केन्द्र है वे ये है—दक्षिण रोडेशिया, सूदान, इरीट्रिया।

ग्रेट ब्रिटेन मे हिन्दी का पठन-पाठन और हिन्दी-पुस्तकों का प्रकाशन उन्नीसवीं शती के आरम्भ से ही पाया जाता है। वैसे सन् १७७३ मे भी लन्दन के श्री फर्ग्युसन ने हिन्दी के दो शब्दकोश रोमन लिपि में प्रकाशित किये थे। आगे चल कर हिन्दी भाषा और साहित्य के अध्ययन और अनुशीलन मे अंग्रेजों ने बडी रुचि दिखाई है। कई अंग्रेज हिन्दी के अच्छे विद्वान् हुए हैं और आज भी है। फोर्टविलियम कालेज के हिन्दुस्तानी अध्यापक गिलक्रिस्ट और हिन्दी-इतिहास के लेखक सर जार्ज ग्रियर्सन का नाम तो प्रसिद्ध ही है। अंग्रेजों का यह हिन्दी-प्रेम भारत के अंग्रेजी राज्य का उपनिवेश होने के कारण था।

सोवियत रूस में हिन्दी-प्रचार का आरम्भ अक्टूबर सन् १९१७ से समझना चाहिए जब राष्ट्रनेता लेनिन के आदेश से महान् साहित्यकार गोर्की के नेतृत्व में वहाँ पौरस्त्य विभाग की स्थापना की गई, इसमें इण्डोलॉजी एक महत्त्वपूर्ण विभाग है। उस स्थापना-काल से लेकर अब तक भारतीय-भाषाओं के लेखकों की ३०० से ऊपर पुस्तकें रूस की ३२ भाषाओं में अनुवाद कर प्रकाशित की जा चुकी हैं। पन्द्रह करोड़ से ऊपर उनकी प्रतियाँ छप चुकी हैं। इन अनुवादों में तुलसीदास का रामचरितमानस भी है, जिसका अनुवाद श्री बेरेन्निकोव ने किया है। अन्य हिन्दी लेखकों में, जिनकी पुस्तकों का अनुवाद रूस की भाषाओं में हुआ है, प्रमुख हैं—कामताप्रसाद गुरु (हिन्दी व्याकरण) किशोरीदास वाजपेयी (हिन्दी शब्दानुशासन), प्रेमचन्द्र (१६ पुस्तकें), सुमित्रानन्दन पन्त सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', यशपाल, डा० रामकुमार वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त। रूस के साहित्यकारों का प्रतिनिधि मण्डल हमारे यहाँ आ चुका है और हिन्दी-लेखकों के प्रतिनिधि-मण्डल भी रूस गये हैं। रूस में हिन्दी का अध्ययन करनेवाले छात्रों की संख्या हजार की संख्या में है। रूसी-साहित्य की अनेक पुस्तकों के सुबोध हिन्दी-अनुवाद वहाँ से प्रकाशित हुए हैं।

इन देशों के अतिरिक्त अन्य जिन देशों में हिन्दी का विधिवत् अध्ययन हो रहा है वे देश हैं—पूर्वी जर्मनी, पश्चिमी जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान और चीन। जापान की तीन युनिवर्सिटियों में हिन्दी-अध्ययन की व्यवस्था है और इसके लिए हिन्दी-लेक्चरर रखे गये हैं। हिन्दी के कई ग्रन्थों और रचनाओं का जापानी भाषा में अनुवाद हो चुका है। इटली, पोलैण्ड, आस्ट्रेलिया, वियतनाम में भी हिन्दी-अध्ययन की ओर रुचि है। अपने पड़ोसी देश और टापू—नैपाल, ब्रह्मा, सिक्किम, भूटान, लंका और अन्दमान-निकोबार की तो कोई बात नहीं है, यहाँ हिन्दी पढ़ी ही जाती है। लंका विश्वविद्यालय में हिन्दी-अध्ययन की व्यवस्था है, महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने यहाँ अध्यक्ष पद पर काम किया है और इस समय श्री आनन्द कौसल्यायन कार्य कर रहे हैं।

इस प्रकार हिन्दी भाषा आज विश्व के एक बड़े भाग मे पढ़ी-लिखी जाती है और निरन्तर व्यापक होती जा रही है। उसे आवश्यकता है उसके घर में ही उन भारतीयो के हिन्दी-प्रेम की, जो अपने अंग्रेजी-प्रेम मे उसे राजकाज मे जगह नहीं देना चाहते है और जबर्दस्ती भारतीय-भाषियो के ऊपर अंग्रेजी का बोझ लाद रहे है जब कि हिन्दी भाषा समूचे भारत मे पूर्ण लोक-प्रिय है।

परिशिष्ट—१

नागरी प्रचारिणी सभा काशी के सभापति

वर्ष	सभापति
संवत् १९५० वि०	श्री राधाकृष्णदास
१९५१	” ”
१९५२—५८	पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र
१९५९—६६	म० म० सुधाकर द्विवेदी
१९६७	प० आदित्यराम भट्टाचार्य
१९६८	म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
१९६९	पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या
	पं० श्यामबिहारी मिश्र
१९७०—७२	पं० श्यामबिहारी मिश्र
१९७३—७४	बाबू श्यामसुन्दर दास
१९७५	बाबू श्याम सुन्दर दास
	श्री गौरी शंकर प्रसाद
१९७६—७८	म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
१९७९—८०	आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
१९८१	डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल
१९८२—८४	श्री हीरालाल
१९८५—८७	डॉ० श्यामसुन्दर दास
१९८८—९०	पं० रामनारायण मिश्र
१९९१—९२	डॉ० श्यामसुन्दर दास
१९९३	श्री पंड्या

१९९४	डॉ० श्याम सुन्दर दास
	पं० रामनारायण मिश्र
१९९५—९६	पं० रामनारायण मिश्र
१९९७	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
	ठा० शिवकुमार सिंह
१९९८	श्री कमलाकर द्विवेदी
१९९९—२००१	डॉ० सम्पूर्णानन्द
२००२—०४	श्री मैथिलीशरण गुप्त
२००५	डॉ० सम्पूर्णानन्द
२००६	राय कृष्णदास
२००७—००८	आचार्य नरेन्द्र देव
२००९	डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
२०१०—१२	डॉ० अमरनाथ झा
२०१३—१७	पं० गोविन्दवल्लभ पन्त (स्वराष्ट्रमंत्री)
२०१८—१९	डॉ० सम्पूर्णानन्द
२०२०—२३	पं० कमलापति त्रिपाठी

परिशिष्ट—२

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के सभापति और अधिवेशन

	सभापति	वर्ष	अधिवेशन
१.	महामना पं० मदनमोहन मालवीय	संवत् १९६७ वि०	काशी
२.	पं० गोविन्दनारायण मिश्र	१९६८	प्रयाग
३.	उपाध्याय पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'	१९६९	कलकत्ता
४.	महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द)	१९७०	भागलपुर
५.	पं० श्रीधर पाठक	१९७१	लखनऊ
६.	रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०	१९७२	प्रयाग
७.	महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा	१९७३	जबलपुर
८.	कर्मवीर मोहनदास कर्मचंद गाँधी	१९७४	इन्दौर
९.	महामना पं० मदनमोहन मालवीय	१९७५	बम्बई
१०	रायबहादुर पं० विष्णुदत्त शुक्ल	१९७६	पटना
११.	डॉ० भगवानदास एम्० ए०, डी० लिट्०	१९७७	कलकत्ता
१२.	पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी एम्० आर्० ए० एस्०	१९७८	लाहौर
१३.	श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन एम्० ए०, एल्-एल्० बी०	१९७९	कानपुर
१४	पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	१९८०	दिल्ली
१५	पं० माधवराव सप्रे	१९८१	देहरादून

१६. पं० अमृतलाल चक्रवर्ती संवत् १९८२ वि० वृन्दावन
१७. म० म० रा० ब० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा १९८३ भरतपुर
१८. पं० पद्मसिंह शर्मा १९८५ मुजफ्फरपुर
१९. श्री गणेशशंकर विद्यार्थी १९८६ गोरखपुर
२०. बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर बी० ए० १९८७ कलकत्ता
२१. पं० किशोरीलाल गोस्वामी १९८८ झाँसी
२२ रावराजा डॉ० श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० १९८९ ग्वालियर
२३ महाराज सर सयाजीराव गायकवाड़ (बड़ौदा) १९९० दिल्ली
२४. महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गाँधी १९९२ इन्दौर
२५. डॉ० राजेन्द्रप्रसाद १९९३ नागपुर
२६. सेठ जमनालाल बजाज १९९४ मद्रास
२७. पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर १९९५ शिमला
२८. पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी १९९६ काशी
२९. श्री सम्पूर्णानन्द १९९७ पूना
३०. डॉ० अमरनाथ झा १९९८ अबोहर
३१. पं० माखनलाल चतुर्वेदी २००० हरिद्वार
३२. गोस्वामी गणेशदत्त २००१ जयपुर
३३. श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी २००२ उदयपुर
३४. श्री वियोगीहरि २००३ करांची
३५. महापण्डित राहुल सांकृत्यायन २००४ बम्बई
३६. सेठ गोविन्ददास २००५ मेरठ
३७. आचार्य चन्द्रबली पाण्डे २००६ हैदराबाद
३८. श्री जयचन्द्र विद्यालंकार २००७ कोटा

परिशिष्ट—३

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के पदवीदान—समारोहों के दीक्षान्त भाषण कर्ता—

सन् १९३१ ई०	आचार्य काका कालेलकर
१९३२	प्रो० मुहम्मद आगा शुस्तरी
१९३३	पं० रामनरेश त्रिपाठी
१९३४	बाबू प्रेमचन्द
१९३५	पंडित सुन्दरलाल
१९३६	बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन
१९३७	जनाब याकूब हसन सेठ
१९३८	श्रीमती सरोजिनी नायडू
१९३९	श्री बाल गंगाधर खरे
१९४०	डॉ० पट्टाभि सीता रामैय्या
१९४१	आचार्य विनोबा भावे
१९४२,४३	सैय्यद अब्दुल्ला बरेलवी
१९४६	राजकुमारी अमृत कौर
१९४८	डॉ० जाकिर हुसैन
१९४९	आचार्य विनोबा भावे
१९५०	श्री आर्० आर्० दिवाकर
१९५२	श्री श्रीप्रकाश
१९५३	श्री ए० जी० रामचन्द्र राव
१९५४	श्री बी० रामकृष्ण राव
१९५६(जनवरी)	श्री एम्० सुन्दर ऐय्यर
१९५६ (अगस्त)	डॉ० राजेन्द्रप्रसाद
१९५७	श्री जगजीवन राम
१९५८	डॉ० हरिकृष्ण महताब
१९५९	श्री सदाशिव कानोजी पाटिल
१९६०	डॉ० बी० गोपाल रेड्डी

परिशिष्ट—४

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन के अध्यक्ष—

वर्ष	स्थान	सम्मेलन	अध्यक्ष
सन् १९४९ ई०	वर्धा	पहला	सेठ गोविन्ददास
१९५०	अहमदाबाद	दूसरा	मुनि जिनविजय जी
१९५१	पूना	तीसरा	श्री वियोगीहरि
१९५२	बम्बई	चौथा	श्री कन्हैयालाल मुंशी
१९५३	नागपुर	पाँचवा	श्री न० वि० गाडगिल
१९५५	पुरी	छठा	डॉ० बालकृष्ण वि० केसकर
१९५६	जयपुर	सातवा	सेठ गोविन्ददास
१९५८	भोपाल	आठवा	डॉ० के० एल्० श्रीमाली
१९५९	नई दिल्ली	नवाँ	श्री अनन्तशयनम् अयंगार
१९६१	तिनसुकिया	दसवा	डॉ० हरिकृष्ण महताब
१९६२	वर्धा	ग्यारहवाँ	(राष्ट्रपति) डॉ० राजेन्द्रप्रसाद
१९६६	औरंगाबाद	बारहवाँ	श्री यशवन्तराव चव्हाण

परिशिष्ट—५

मंगलाप्रसाद पारितोषिक-प्राप्त लेखक (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

	लेखक	ग्रन्थ	वर्ष
१	श्री पद्मसिंह शर्मा	बिहारी सतसई	संवत् १९७९ वि०
२.	म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा	प्राचीन लिपि-माला	१९८१
३.	प्रो० सुधाकर	मनोविज्ञान	१९८२
४	श्री त्रिलोकीनाथ वर्मा	हमारे शरीर की रचना	१९८३
५.	,, वियोगी हरि	वीर सतसई	१९८४-८५
६.	प्रो० सत्यकेतु	मौर्य-साम्राज्य का इतिहास	१९८६
७.	श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय	आस्तिकवाद	१९८७
८.	डॉ० गोरखप्रसाद	फोटोग्राफी की शिक्षा	१९८८
९.	डॉ० मुकुन्दस्वरूप	स्वास्थ्य विज्ञान	१९८९
१०.	श्री जयचन्द्र विद्यालंकार	भारतीय इतिहास की रूपरेखा	१९९०
११.	,, चन्द्रावती लखनपाल	शिक्षा-मनोविज्ञान	१९९१
१२	,, रामदास गौड़	विज्ञान-हस्तामलक	१९९२
१३.	,, अयोध्यासिंह उपाध्याय	प्रियप्रवास	१९९३
१४	,, मैथिलीशरण गुप्त	साकेत	१९९३
१५.	,, जयशंकर प्रसाद	कामायनी	१९९४
१६.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	चिन्तामणि	१९९५
१७	श्री वासुदेव	गुप्त ७ का इतिहास	१९९६

१८.	डॉ० सम्पूर्णानन्द	समाजवाद संवत्	१९९७ वि०
१९.	श्री बलदेव उपाध्याय	भारतीय दर्शन	१९९८
२०	,, महावीर प्रसाद श्रीवास्तव	सूर्य सिद्धान्त का विज्ञान-भाष्य	१९९९
२१.	,, शंकरलाल गुप्त	क्षयरोग	२०००
२२.	श्रीमती महादेवी वर्मा	रश्मि, नीरजा, आधुनिक कवि	२००१
२३.	डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी	कबीर	२००२
२४.	डा० रघुवीर सिंह	मालवा में युगान्तर	२००३
२५.	श्री कमलापति त्रिपाठी	बापू और मानवता	२००४
२६.	डॉ० सम्पूर्णानन्द	चिद्विलास	२००५
२७	श्रीमती चन्द्रावती राधारमण	सन्तुलित गोपालन	२००७
२८.	डॉ० दीनदयालु गुप्त	अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय	२००९
२९.	डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल	हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन	२०१०
३०.	श्री सत्यव्रत सिद्धांतालंकार	समाजशास्त्र के मूल तत्त्व	२०११
३१.	श्री उदयवीर शास्त्री	सांख्यदर्शन का इतिहास	२०१२
३२.	प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा	ईख और चीनी	२०१६

परिशिष्ट—६

महात्मा गाँधी पुरस्कार-प्राप्तकर्ता अहिन्दी-भाषी हिन्दी-लेखक
(राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा)

लेखक	वर्ष
१. आचार्य क्षितिमोहन सेन	सन् १९५१ ई०
२ महर्षि श्रीपाद दामोदर सातवलेकर	१९५२
३. स्व० बाबूराव विष्णु पराड़कर	१९५३
४. आचार्य विनोबा भावे	१९५५
५. प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलाल संघवी	१९५६
६. पं० सन्तराम बी० ए०	१९५८
७. श्री काका साहब कालेलकर	१९५९
८. श्री अनन्तगोपाल शेवड़े	१९६१
९. स्व० डॉ० रांगेयराघव	१९६६

भारती परिषद् प्रयाग

[अखिल भारतीय सांस्कृतिक संस्थान]

प्रतिष्ठापक महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय।

स्थापना संवत् १९९४, सन् १९३७।

उद्देश्य भारतीय समाज को शिक्षित और उदात्त बनाने के लिए बौद्धिक एवं रचनात्मक कार्यों द्वारा भारत-भारती की प्रतिष्ठा बढ़ाना।

माध्यम भारती शोध संस्थान, भारती विद्यासंस्थान, भारती संग्रहालय, भारती परीक्षाएँ

शाखाएँ : दिल्ली, महाराष्ट्र, असम, कश्मीर, बंगाल, मध्यप्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश।

अध्यक्ष : पण्डित सीताराम चतुर्वेदी, साहित्याचार्य, एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत, पालि, प्रत्न भारतीय इतिहास तथा संस्कृति) बी० टी०, एल० एल० बी०।

महामन्त्री : श्रीधर शास्त्री, व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न

कार्यालय बहादुरगंज, इलाहाबाद-३